M.A. I Semester (Theory) Course Code MUSI-101TH

CORE COURSE

HISTORICAL STUDY OF INDIAN MUSIC

Lesson 1 – 13

Dr. Kirti Garg

Deptt.Of Performing Arts (Music)

Himachal Pradesh University

Summer Hill, Shimla - 5

अनुक्रमणिका

पाठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	पाठ्यक्रम	3
	प्राक्कथन	4 – 5
LESSON – 1	स्वर और श्रुति का ऐतिहससिक विवेचन	6 – 29
LESSON – 2	स्वर–श्रुति का सम्बन्ध भरत, शारंगदेव, भातखण्डे एवं बृहस्पति के अनुसार	30 – 62
LESSON – 3	ग्राम क्या है तथा षड़ज और मध्यम ग्राम की वीणा पर स्थापना	63 – 73
LESSON – 4	भारतीय संगीत में मूर्च्छना, मेल और थाट पद्धति	74 – 94
LESSON – 5	वैदिक एवं रामायण काल का संगीत	95 – 109
LESSON – 6	महाभारत एवं पुराण काल का संगीत	110 – 123
LESSON – 7	जैनकाल और बौद्धकाल का संगीत	124 – 130
LESSON – 8	मौर्य एवं गुप्तकाल का संगीत	131 – 138
LESSON – 9	भरत काल में संगीत	139 – 148
LESSON – 10	मतंग और शारंगदेव के समय में संगीत	149 – 162
LESSON – 11	नाद और उसके भेद एवं प्रकार	163 – 175
LESSON – 12	रस की परिभाषा और उसके प्रकार	176 – 189
LESSON – 13	जाति और उसके लक्षण	190 – 200
	अभ्यासार्थ वस्तुनिष्ठ प्रश्न–उत्तर	201 – 202
	ASSIGNMENT	203

Syllabus

Semester – I

Course Code	**Course Type**	**Course Name**
MUSI-101 TH	**Core Course**	**Historical Study of Indian Music**

Theory Paper – Total Marks = 100 (For Reguler Students – 80 Theory + 20 IA)(For ICDEOL Students – 80 Theory +20Assignment) Min. Pass %age – 36% (Credit – 4) Time – 3 Hours

Instructions

The question paper will contain 2 parts (Part A and Part B) in all.

Part A

- Ten (10) Objective type Questions (MCQ/True or False/Fill in the blanks etc.) for one (1) marks each. (10x1=10 marks) and
- four (4) short answer questions of two (2) marks each covering whole syllabus.

Part B

Each question may contain sub parts & will be of long type

- Unit-I : One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eight (8)marks.
- Unit-II : One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eight(8)marks.
- Unit-III : One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eigh(8)marks.
- Unit-IV: One (1) question, out of Two (2) questions, is to be attempted for eigh(8)marks.

Total Marks (A+B+C+D+E) 18+8+8+8+8=50 marks

Course of Study
Unit-I

1. Historical development of Shruti & Swar.

2. Relationship between Shruti & Swar with special reference to Bharat, Sharangdev, Bhatkhande and Acharya Brihaspati.

Unit-II
1. Knowledge of Gram & establishment of Sadej & Medhyam Gram Veena.
2. Murchana, Mela, and Thata Padhati in Hindustani Music.

Unit-III

1. Vedic Music, of Ramayana, Mahabharata & Purana's.
2. Music of Jain, Buddhist, Maurya & Gupta period.
3. Music in the treatises of bharat, Matang and Sarangdev.

Unit-IV

1. Elementary study of the musical sound and noise Vibrations, Frequency, duration, Pitch, Magnitude and timber or quality.

2. Definition of Rasa and its varieties according to Bharat & Abhinav Gupta.

3. Detailed Study of Jatis and their Lakshans.

प्राक्कथन

जीवन सीमित है और कार्य अन्नत,

तू बढ़ता चल–बढ़ता चल, जीवन पर्यन्त।

जिस प्रकार भारत वर्ष में हर क्षेत्र में उन्नति हो रही है, उसी प्रकार संगीत में भी दिन–प्रतिदिन उन्नति होती जा रही है। आज संगीत भारत की शिक्षण संस्थाओं में न केवल पढ़ाया जा रहा है अपितु इसके विकास के लिए नए–नए कार्य भी किए जा रहे हैं। आज शिक्षा की नई प्रणाली हमारे शिक्षा के क्षेत्र में अपनाई गई है, जिसमें विषय और विद्यार्थी दोनों का हित है। आज संगीत में हम नए–नए आयामों को छूते जा रहे हैं और नए–नए क्षेत्रों में प्रवेश कर विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं।

इसी को ध्यान में रखते हुए संगीत की यह पाठ्य सामग्री M.A. - I SEMESTER के शास्त्र–पक्ष (Theory) के लिए लिखी गई है। M.A-I SEM का यह पाठयक्रम नई शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत लिखा गया है। इस संस्करण में यथा स्थान और यथा–सम्भव हर उपयोगी संगीत से सम्बन्धित सामग्री का समावेश कर दिया गया है जो कि नए पाठयक्रम के अनुसार है।

इस शिक्षण सामग्री को अपने संगीत अनुभव के आधार पर लिखने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही संगीत से सम्बन्धित पुस्तकों द्वारा भी संगीत की शिक्षण सामग्री एकत्रित की गई है। इस पाठ्यक्रम को भाषा व विषय–वस्तु की दृष्टि से पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पाठयक्रम के प्रथम भाग (इकाई – 1) में

LESSON – 1 में स्वर और श्रुति का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है।

LESSON - 2 में स्वर और श्रुति के आपसी सम्बन्ध की व्याख्या भरत, शारंगदेव, भातखण्डे और बृहस्पति के अनुसार की गई है।

इस पाठ्यक्रम के द्वितीय भाग (इकाई – 2) में

LESSON-3 में ग्राम क्या है और षड़ज तथा मध्यम ग्राम को किस प्रकार वीणा पर स्थापित किया गया, इसका वर्णन किया गया है।

LESSON-4 में मूर्च्छना, मेल, और थाट पद्धति का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इस पाठ्यक्रम के तृतीय भाग (इकाई – 3) में

LESSON-5 में वैदिक एवं रामायण काल के संगीत का विस्तृत वर्णन किया गया है।

LESSON-6 में महाभारत एवं पुराणकाल के संगीत को वर्णित किया गया है।

LESSON-7 में जैन और बौद्धकाल के संगीत पर प्रकाश डाला गया है।

LESSON-8 में मौर्य एवं गुप्त काल के संगीत की विस्तृत व्याख्या की गई है।

LESSON-9 में भरत काल के संगीत को वर्णित किया गया है।

LESSON-10 में मतंग और शारंगदेव के समय में संगीत की स्थिति और विकास पर प्रकाश डाला गया है।

इस पाठ्यक्रम के चतुर्थ भाग में (इकाई – 4) में

LESSON-11 में नाद के विषय में विस्तृत व्याख्या की गई है।

LESSON-12 में रस के विषय में विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

LESSON-13 में जाति और उसके दस लक्षणों के विषय में बताया गया है।

इस प्रकार M.A - I SEMESTER की परीक्षा में आने वाले प्रत्येक प्रश्न का उत्तर आपको इस पाठ्यक्रम सामग्री में अवश्य उपलब्ध होगा। मैं आशा करती हूँ कि संगीत से जुड़े अन्य पाठकों को भी इस अध्ययन सामग्री से लाभ प्राप्त होगा।

डा0 कीर्ति गर्ग

संगीत विभाग

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

UNIT – 1

LESSON - 1

Historical development of Shruti and Swara

स्वर और श्रुति का ऐतिहासिक विकास

STRUCTURE

1.1 भूमिका

1.2 उदेश्य

1.3 श्रुति का अर्थ

1.4 भातखण्डे द्वारा श्रुति विभाजन

1.5 श्रुति भेद

1.5.1 स्वर श्रुतियां

1.5.2 अंतः श्रुतियां

1.5.3 संगीत की 22 श्रुतियां

1.6 स्वर की परिभाषा

1.7 शुद्ध और विकृत स्वरों की व्याख्या

1.7.1 शुद्ध स्वर

1.7.2 चल स्वर

1.7.3 अचल स्वर

1.7.4 विकृत स्वर

1.7.4.1 कोमल विकृत

1.7.4.2 तीव्र विकृत

1.7.4.3 संगीत के 12 स्वर

1.8 स्वरों की आन्दोलन संख्या

1.8.1 स्वरों की आन्दोलन संख्या निकालना

1.8.2 स्वरों की आन्दोलन संख्या जानने के तीन आधार

1.8.3 स्वरों का गुणान्तर

1.8.4 आन्दोलन संख्या से लम्बाई निकालना

1.9 स्वरों में श्रुतियों को बांटने का नियम

1.10 स्वर–श्रुति की तुलना

1.11 सारांश

1.12 शब्दकोष

1.13 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

1.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.15 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.1 भूमिका :–

"श्रुयते इति श्रुतिः" अर्थात् जो कुछ भी कानों द्वारा सुना जाए वह 'श्रुति' है। इस दृष्टि से प्रत्येक प्रकार की ध्वनि चाहे वह संगीत उपयोगी हो या न हो श्रुति ही कहलाएगी। वह चाहे कोयल की मधुर ध्वनि हो, गधे का रेंकना हो, दो पत्थरों के बीच घर्षण की ध्वनि हो या फिर किसी भी प्रकार की ध्वनि हो सभी श्रुति के व्यापक अर्थ में 'श्रुति' ही कहलाएगी। लेकिन संगीत में श्रुति का यह शाब्दिक अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि संगीत में वही श्रुति मानी जा सकती है जो संगीत उपयोगी हो क्योंकि संगीत का उदेश्य मानव ह्रदय को रंजन प्रदान करना

है। दूसरी ओर स्वर संगीत का मूलाधार माना जाता है। हम यह कह सकते हैं कि श्रुति ही स्वर की जननी है। स्वर हम उसे कहते हैं जो रंजक होता है और जिसका स्थान संगीत में अन्य नादों की अपेक्षा विशिष्ट माना जाता है। हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि श्रुति के बिना स्वर नहीं और स्वर के बिना संगीत नहीं हो सकता।

1.2 उदेश्य :–

इस पाठ में स्वर और श्रुति के ऐतिहासिक विकास के विषय में वर्णन किया गया है। इस पाठ का उदेश्य स्वर और श्रुति के विषय में जानना, उनकी परिभाषाओं से अवगत होना तथा श्रुति और स्वर का संगीत में क्या महत्व है तथा इन दोनों का विकास किस प्रकार हुआ है, इन सब की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है।

1.3 श्रुति का अर्थ :–

नियमित, स्थिर तथा मधुर ध्वनि जो संगीत उपयोगी होती है, नाद कहलाती है। 'मध्य सा' से 'नी' तक असंख्य नाद हो सकते हैं। संगीत विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि इसमें से अधिक से अधिक बाईस नाद संगीत में प्रयोग किए जा सकते हैं, क्योंकि नाद की संख्या उतनी ही माननी चाहिए जिन्हें भली प्रकार से पहचाना जा सके, उनके बीच का अन्तर बताया जा सके और समयानुसार प्रयोग किया जा सके। इन्हीं बाईस नादों को 'श्रुति' कहते हैं अर्थात् वह नाद जिसे हम स्पष्ट रूप से सुन सकें, समझ सकें तथा किन्हीं भी दो नादों के बीच का अन्तर बता सकें, वही 'श्रुति' कहलाता है। शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है, ''श्रुयते इति श्रुतिः'' अर्थात् श्रुति वह है जिसे हम सुन सकें। सुनने का तात्पर्य केवल सुनना ही नहीं अपितु सुन कर समझ लेना भी है।

शास्त्रकारों ने बाईस श्रुतियों के बीच इतना अन्तर माना है कि तेइसवीं श्रुति पहली श्रुति से ठीक दुगनी ऊँचाई पर रहे क्योंकि तेइसवीं श्रुति से दूसरा सप्तक प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार नाद तो असंख्य हैं, किन्तु श्रुतियाँ केवल 22 ही हैं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक श्रुति नाद है किन्तु प्रत्येक नाद श्रुति नहीं है केवल 22 नाद ही श्रुति हैं। इसलिए संगीत में अधिकतर श्रुति शब्द का प्रयोग होता है नाद का नही।

''श्रुति'' एक संस्कृत का शब्द है, जो ''श्रु'' धातु से बना है। 'श्रु' का अर्थ है ''सुनना'' और श्रुति का अर्थ है सुना हुआ। इस अर्थ के अनुसार हम किसी भी आवाज़ को जो कानों द्वारा स्पष्ट सुनी जा सके, श्रुति कह सकते हैं।

"Any sound that is capable of being distintly heard by the ear can be called SHRUTI."

श्रुति को हम 'माइक्रो टोन' (Micro Tone) भी कहते हैं।

इसके अतिरिक्त प्राचीन ग्रंथकारों ने श्रुति की परिभाषा इस प्रकार की है :–

"श्रवणेन्द्रिय ग्रहय त्वादध्वनिरेद श्रुतिर्भवते।"

अर्थात् जिस ध्वनि को कान ग्रहण कर सकें अथवा सुन सकें उसे "श्रुति" कहते हैं।

"अभिनव राग मंजरी" में श्रुति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:– "जो आवाज़ गीत में प्रयोग की जा सके और जो एक दूसरे से अलग पहचानी जा सके उसे "श्रुति" कहते हैं।"

अतः साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि, स्पष्ट रूप से सुनी जा सकने वाली आवाज़ को हम श्रुति कहते हैं। वह आवाज़, जो गीत में प्रयुक्त की जा सके और एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, "श्रुति" कहलाती है। इसे अधिक स्पष्ट समझने के लिए मान लीजिए, हमने पहले एक नाद लिया, जिसकी आन्दोलन संख्या 100 कंपन प्रति सैकिंड है। फिर हमने दूसरा नाद लिया, जिसकी आन्दोलन संख्या 101 कंपन प्रति सैकिंड है। वैज्ञानिक दृष्टि से तो ये दो भिन्न नाद हैं, परन्तु इनकी कंपन–संख्याओं में इतना कम अन्तर है कि किसी कुशल संगीतज्ञ के कान भी इन दोनों नादों को पृथक्–पृथक् शायद ही पहचान सकें। अब यदि हम दूसरे नाद में क्रमशः एक–एक कंपन प्रति सैकिंड बढ़ाते जाएं, तो एक स्थिति ऐसी आ जाएगी कि ये दोनों नाद अलग–अलग स्पष्ट पहचाने जा सकेंगे और इन दोनों नादों को पृथक्–पृथक् स्पष्ट सुना जा सकेगा। इसी आधार पर विद्वानों ने श्रुति की परिभाषा यह दी है कि जो नाद एक–दूसरे से पृथक् तथा स्पष्ट पहचाना जा सके, उसे 'श्रुति' कहते हैं। इस प्रकार संगीत विद्वान एक सप्तक में ऐसे अलग–अलग सुने जा सकने वाले नादों की संख्या बाईस मानते हैं।

भरत ने नाटय शास्त्र में 22 श्रुतियों को ही प्राकृतिक एवं व्यावहारिक माना है।

ब्रह्मस्वरूप ने भी 'थ्योरी आफ म्यूज़िक' में लिखा है कि एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ ही वैज्ञानिक हैं। दूसरी और हनुमत के मतानुसार एक सप्तक में 18 श्रुतियाँ बताई गई हैं। अकलंका श्रीनिवास एक सप्तक में 24 श्रुतियाँ मानते हैं। युनानियों तथा ईरानियों ने भी 24 श्रुतियों को माना है लेकिन हमारे प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों ही मानी हैं और यह व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही भी माना गया है और प्राचीन समय से लेकर आज तक मान्य है।

'स्वरमेलकलानिधि' में श्रुति के विषय में कहा गया है कि –

तस्य द्वाविंषतिर्भेद श्रवणात् श्रुतयो मताः।

ह्रदयाभ्यन्तरसंलग्ना नाड्यो द्वाविंषतिर्मताः।।

अर्थात्– ह्रदय स्थान में बाईस नाड़ियाँ हैं। उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं, अतः उन्हीं को 'श्रुति' कहते हैं। यही नाद के 22 भेद माने गए हैं।

हमारे संगीत शास्त्रकार प्राचीन समय से 22 नाद मानते चले आ रहे हैं। ये नाद क्रमशः एक–दूसरे से ऊँचे चढ़ते चले गए हैं। इन्हीं 22 नादों को 'श्रुति' कहते हैं। प्राचीनकाल में संगीत के दो मुख्य ग्रंथकार भरत और शारंगदेव हुए हैं। ईसा से बहुत समय पूर्व भरत ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ ''नाट्यशास्त्र'' लिखा और तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव ने ''संगीत रत्नाकर'' नामक ग्रंथ लिखा, जिसका प्रमाण आज भी बहुत सी संगीत–पुस्तकों द्वारा मिलता है। इन पंडितों ने अपने–अपने ग्रंथों में श्रुतियों का वर्णन भी किया है, जिनमें इन दोनों ने एकमत से एक सप्तक में कुल 22 श्रुतियाँ ही मानी हैं। इन्होंने दो श्रुतियों के बीच के अन्तर को समान माना है अर्थात् पहली श्रुति से दूसरी श्रुति में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर समस्त श्रुतियों में माना है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 श्रुति की परिभाषा क्या है ?

प्र0.2 अलग–अलग ग्रन्थकारों ने कितनी–कितनी श्रुतियां मानी हैं ?

1.4 भातखण्डे द्वारा श्रुति विभाजन :–

संगीताचार्य चतुर ने श्रुतियों का प्रकृति के अनुसार विभाजन किया है। उन्होंने ये विभाजन चार भागों में किया है। जैसे ––

1. उच्च व रूक्ष ध्वनि को 'वात्तज'।

2. गंभीर व घनशील ध्वनि को 'पित्तज'।

3. मधुर व सुकुमार ध्वनि को 'कफज'।

4. उपरोक्त सभी के मिश्रण को 'सन्नीपात' कहा गया।

कोहल ने 'कोहलम' ग्रन्थ में 66 श्रुतियों का वर्णन किया है। उनके अनुसार मन्द्र, मध्य तथा तार इन तीनों सप्तकों की कुल श्रुतियों की संख्या 22×3 = 66 होती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 भातखण्डे जी ने श्रुति विभाजन कितने भागों में किया है ?

प्र0.2 कोहल ग्रन्थकार ने कितनी श्रुतियां मानी हैं ?

1.5 श्रुति भेद :–

श्रुतियों के दो भेद बताए गए हैं :–

1.5.1 स्वर श्रुतियां :– स्वर श्रुतियां मधुर होती हैं। स्वर श्रुतियां गिनती में सात होती हैं।

1.5.2 अंतः श्रुतियां :– अंतः श्रुतियां कर्कष होती हैं। यह संख्या में 13 होती हैं।

स्वर दो, तीन व चार श्रुतियों का बनता है। अतः दो स्वरों के बीच में श्रुति होगी तभी तो दो स्वर बन सकतें हैं अर्थात् स्वर उत्पति के लिए कम से कम दो श्रुतियां अनिवार्य हैं।

इन श्रुतियों की विशेषता यह है कि जब तक किसी श्रुति पर स्वर स्थापित नहीं किया जाता तब तक वह श्रुति स्वरत्व पाने की क्षमता रखती है और जब किन्ही श्रुतियों पर स्वर स्थापना कर दी जाती है तब स्वरों वाली श्रुतियां स्वर श्रुति तथा अन्य श्रुतियां अंतः श्रुतियां बन जाती हैं।

अतः अंत में हम ये कह सकते हैं कि गायन–वादन के लिए सप्तक में से संगीत के प्राचीन पंडितों ने 22 स्थान ऐसे चुन लिए, जिनकी आवाज़ें परस्पर ऊँची–नीची हैं और जो संगीत में उपयोगी सिद्ध हुईं, इन्हें ही ''श्रुति'' कहा गया है।

1.5.3 संगीत में प्रयोग होने वाली 22 श्रुतियाँ इस प्रकार हैं —

श्रुति संख्या	श्रुति नाम
1	तीव्रा
2	कुमुद्वति
3	मन्दा
4	छन्दोवती
5	दयावती
6	रंजनी
7	रक्तिका
8	रौद्री
9	क्रोधी
10	वज्रिका
11	प्रसारिणी
12	प्रीति
13	मार्जनी
14	क्षिती
15	रक्ता
16	संदीपनी
17	आलापनी
18	मदन्ति
19	रोहिणी
20	रम्या
21	उग्रा
22	क्षोभिणी

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 श्रुति के कितने भेद बताए गए हैं ?

प्र0.2 स्वर श्रुति तथा अंतः श्रुति की क्या विशेषता है ?

1.6 स्वर की परिभाषा :–

''**स्व**'' का अर्थ है '**स्वयं**' और ''**र**'' का अर्थ है राज़ृ धातु से '**राजते**' अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित हो वह ''**स्वर**'' है।

''स्वयं जो राजते नाद स स्वर परिकीर्तितः'' अर्थात् जो नाद स्वयं शोभित अथवा दिव्य है अर्थात् स्वयं मधुर होता हो या ''स्वयं रंजयति इति'' अर्थात् जो स्वयं में रंजक हो उसे ''**स्वर**'' कहते हैं।

वह संगीतोपयोगी आवाज़ जो स्पष्ट और स्वयं मधुर हो, जिसे सुनकर मानव मन को प्रसन्नता की अनुभूति हो स्वर कहलाती है। पं0 अहोबल के विचारानुसार जो अपने आप ही सुनने वालों के चित को आकर्षित करते हैं वे स्वर कहलाते हैं।

''संगीत दर्पण'' के लेखक दामोदर पंडित की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति उत्पन्न करने के बाद जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित होता है उसे स्वर समझना चाहिए।

पुण्डरिक विट्ठल के मतानुसार अनुरणनहीन नाद को श्रुति कहते हैं और जब श्रुति अनुरणन हो जाती है तब वह स्वर बन जाती है।

श्रुत्यनन्तर भावीयः स्निग्धोअनुरणनात्मक।

स्व तो रंजयति श्रोतृचिंत स स्वर उच्चते।

शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में दी स्वर की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति के पश्चात् तुरन्त उत्पन्न होने वाला नाद, जो सुनने वालों के चित का स्वतः रंजन कर सकता है वह स्वर कहलाता है।

इसके अतिरिक्त आचार्य बृहस्पति ने स्वर की परिभाषा करते हुए कहा है– ''श्रुति स्थान पर होने वाले अभिघात से उत्पन्न जो शब्द है, उसके प्रभाव से उत्पन्न जो अनुरणनात्मक (गूंज युक्त) स्निग्ध और मधुर जो शब्द होता है वह 'स्वर' है।'' आचार्य के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गूंज युक्त मधुर ध्वनि स्वर है और यह अपने मधुरत्व के कारण ही वांछनीय है और भावाभिव्यक्ति में समर्थ है।

डा0 लालमणी मिश्र का कहना है कि किसी भी ध्वनि को स्वर की संज्ञा पाने के लिए निम्न गुणों से युक्त होना आवश्यक है –

1) कानों तक सुनाई पड़ने की शक्ति

2) वर्ण प्रियता

3) स्थिरता

4) मधुरता

5) रंजकता

6) संगीतोपयोगीत्व

राघव आर0 मैनन अपनी किताब 'दि साउंड आफ इंडियन म्युज़िक' में लिखते हैं कि 'स्व' तथा 'र' से 'स्वर' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है स्वयं के लिए प्रस्तुत करना। मधुरता स्वर का प्रमुख लक्षण है।''

हम ये भी कह सकते हैं कि संगीत में जिसका कोई निश्चित रूप हो और जिसकी कोमलता या तीव्रता अथवा उतार–चढ़ाव सुनते ही सरलता से अनुमान लग सके उसे हम स्वर कहते हैं।

ये पुराने समय से संगीतविदों तथा विज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जाता रहा है कि तार में या किसी भी पदार्थ में जब 240 बार कंपन्न हो तो षड़ज स्वर की उत्पत्ति होती है। 270 बार कंपन्न से रिषभ, 300 कंपन्न से गन्धार, 320 से मध्यम, 360 से पंचम, 400 से धैवत, 450 से निषाद स्वर उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार पशु–पक्षियों से भी स्वरों की उत्पति मानी गई है। जैसे मोर, गाय, बकरी, क्रौंच, कोयल, घोड़ा और हाथी।

भरत के समय में मूर्छना पद्धति का प्रचलन था। उस समय सात शुद्ध और दो विकृत कुल मिलाकर नौ स्वर प्रचलित थे। धीरे–धीरे प्राचीन परम्परा विलुप्त होती गई और 9 के स्थान पर 12 स्वरों का प्रचलन शुरू हो गया। अतः 22 श्रुतियों में से 12 स्वर चुनकर संगीत में गायन–वादन शुरू हुआ। इन 12 स्वरों को षड़ज, रिषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, तथा निषाद संज्ञा से पुकारा जाता है। इन 12 स्वरों में से सात शुद्ध तथा पाँच विकृत स्वर माने गए।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 स्वर की परिभाषा बताइए ?

प्र0.2 शारंगदेव ने स्वर की क्या परिभाषा बताई है ?

प्र0.3 डा.लालमणी मिश्र के अनुसार ध्वनि को स्वर की संज्ञा पाने के लिए क्या गुण होने चाहिए ?

1.7 शुद्ध और विकृत स्वरों की व्याख्या :–

1.7.1 शुद्ध स्वर–

जब स्वर अपने नियत स्थान पर पहले से ही स्थित होते हैं तब उन्हें शुद्ध स्वर कहते हैं। सा, रे, ग, म, प, ध, नि ये सात शुद्ध स्वर कहलाते हैं। ये सातों स्वर अपने उचित स्थान पर नियत रहते हैं।

1.7.2 चल स्वर–

जब हम रे, ग, म, ध, नि इन पाँच शुद्ध स्वरों को उनके निश्चित स्थान से ऊँचा या नीचा करते हैं तो ये स्वर अपने नियत स्थान से इधर–उधर खिसक जाते हैं। अपने नियत स्थान से हटने के कारण ही इन स्वरों को चल स्वर भी कहा जाता है।

1.7.3 अचल स्वर–

सात शुद्ध स्वरों में से 'सा' और 'प' स्वर अचल स्वर माने जाते हैं क्योंकि ये दो स्वर अपने स्थान से कभी नहीं हटते। यही कारण है कि इन स्वरों के दो रूप नही होते। इन दो अचल स्वरों को 'अधिकृत' और 'प्राकृत' स्वर भी कहते हैं।

1.7.4 विकृत स्वर–

सा और प के अतिरिक्त रे, ग, म, ध, नि ये पाँचों स्वर अपने नियत स्थान से हटते हैं इस लिए इन्हें विकृत स्वर कहते हैं। विकृत का अर्थ है अपने स्थान से हटा हुआ। अतः जब रे, ग, म, ध, नि शुद्ध स्वरों को उनके नियत स्थान से ऊँचा या नीचा किया जाता है, तब उन्हें विकृत स्वर कहा जाता है।

विकृत स्वर दो प्रकार के बताए गए हैं– कोमल विकृत तथा तीव्र विकृत।

1.7.4.1 कोमल विकृत–

जब रे, ग, ध, नि इन चार शुद्ध स्वरों की आवाज़ को उनके नियत स्थान से नीचे किया जाता है तब इन स्वरों को हम कोमल विकृत स्वर कहते हैं। इन स्वरों को क्रमशः कोमल रे, कोमल ग, कोमल ध, कोमल नि कह कर पुकारा जाता है। इन स्वरों की पहचान के लिए इन स्वरों के नीचे एक छोटी सी रेखा खींच दी जाती है जो कोमल स्वरों को दर्शाती है। जैसे– रे ग ध नि ये चिन्ह कोमल स्वरों को सूचित करते हैं।

1.7.4.2 तीव्र स्वर–

जब शुद्ध मध्यम की आवाज़ को उसके नियत स्थान से ऊँचा किया जाता है तब वह तीव्र विकृत स्वर कहलाता है और इसे तीव्र मध्यम कह कर पुकारा जाता है। इस स्वर की पहचान के लिए स्वर के ऊपर एक खड़ी रेखा लगाई जाती है। पाँच विकृत स्वरों में से मध्यम ही एक ऐसा स्वर है जो अपने नियत स्थान से ऊँचा होने पर विकृत होता है और तीव्र मध्यम कहलाता है।

इस प्रकार संगीत में 12 स्वरों का प्रयोग किया जाता है जो कि इस प्रकार हैं :–

1.7.4.3 संगीत के 12 स्वर :–

1) सा
2) कोमल रे
3) शुद्ध रे
4) कोमल ग
5) शुद्ध ग
6) शुद्ध म
7) तीव्र म
8) प
9) कोमल ध
10) शुद्ध ध
11) कोमल नि
12) शुद्ध नि

इन्हीं स्वरों को अंग्रेज़ी भाषा में 'सी डी इ एफ जी ए बी' (C D E F G A B) कहते हैं। इन्हीं स्वरों को इटैलियन भाषा में 'डो रे मी फा सोल ला सी' (Do Re Mi Fa Sol La Si) कहते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 शुद्ध और विकृत स्वरों से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 संगीत में प्रयोग होने वाले 12 स्वरों के नाम बताइए ?

1.8 स्वरों की आन्दोलन संख्या :–

जब हम वीणा, सितार या तानपूरे के किसी तार को छेड़ते या बजाते हैं, तो उसे तार से एक झनकार पैदा होती है। उस झनकार द्वारा एक सैकिंड में हवा में जो कंपन पैदा होता है, उसे ही 'आन्दोलन' कहते हैं। आन्दोलन–संख्या जितनी अधिक होती है, नाद उतना ही ऊँचा होता है और आन्दोलन–संख्या जितनी कम होती है, नाद उतना ही नीचा होता है।

इसी प्रकार तार की लम्बाई से भी नाद की ऊँचाई और निचाई ज्ञात होती है। तार की लम्बाई कम होगी, तो नाद ऊँचा पैदा होगा और यदि तार की लम्बाई अधिक होगी, तो नाद नीचा पैदा होगा।

1.8.1 स्वरों की आन्दोलन–संख्या निकालना :–

ऊपर बताया जा चुका है कि जितनी ही आवाज़ ऊँची होगी, उतने ही आन्दोलन अधिक होंगे और आवाज़ जितनी नीची होती जाएगी, आन्दोलन–संख्या उसी अनुपात से कम होती जाएगी।

विज्ञान के पंडितों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सबसे नीची आवाज़ द्वारा एक सैकिंड में 16 आन्दोलन हो सकते हैं और सबसे ऊँची आवाज़ के एक सैकिंड में 38000 आन्दोलन हो सकते हैं। यह ऊँची आवाज़ लगभग ग्यारह सप्तक ऊँचाई की होगी। इस हिसाब से षड़ज स्वर की आन्दोलन–संख्या 240 मान कर हमारे शास्त्रकारों ने तथा पश्चिमी विद्वानों ने बारह स्वरों की आन्दोलन–संख्या नियत की है।

1.8.2 स्वरों की आन्दोलन–संख्या मालूम करने के तीन आधार हैं :–

क. जिस स्वर की आन्दोलन–संख्या मालूम करनी हो, उसके तार की लम्बाई का का नाप।

ख. षड़ज स्वर के तार की लम्बाई।

ग. षड़ज स्वरों की आन्दोलन–संख्या।

1.8.3 स्वरों का गुणान्तर :–

स्वरों की आन्दोलन–संख्या मालूम करने के लिए स्वरों के आपसी गुणान्तर को समझे बिना आगे बढ़ना ठीक न होगा। दो स्वरों की आन्दोलन–संख्याओं के भजनफल को उनका गुणान्तर या स्वरान्तर कहते हैं, जैसे षड़ज स्वर की आन्दोलन–संख्या 240 मान ली गई है, अब यदि पंचम स्वर की आन्दोलन–संख्या 360 हो, तो षड़ज और पंचम का गुणान्तर बड़ी संख्या में छोटी संख्या का भाग देने से निकल आएगा, अर्थात् 360÷240 = 360/240 अथवा 3/2 या 1 1/2 । इसका अर्थ यह हुआ कि पंचम स्वर षड़ज स्वर से डेढ़ गुना ऊँचा है।

इस प्रकार यदि किसी स्वर का गुणान्तर हमें मालूम हो, तो षड़ज की आन्दोलन–संख्या 240 को उससे गुणा कर देने से उस स्वर की आन्दोलन–संख्या निकल आती है। चाहे जिस स्वर की भी आन्दोलन–संख्या निकाली जाए, किन्तु षड़ज की सहायता के बिना वह नहीं निकल सकेगी, क्योंकि षड़ज ही सब स्वरों का आधार है।

तार की लम्बाई के नाप से भी स्वरों का गुणान्तर निकल आता है, जैसे षड़ज के तार की लम्बाई 36 इंच है और मध्यम की लम्बाई 27 इंच है, अब हमने इसका गुणान्तर निकाला, तो 36 में 27 का भाग दिया, इसका अर्थ हुआ 36/27 या 4/3 । इस प्रकार षड़ज और मध्यम में 4 : 3 का या 4/3 का स्वरान्तर है। अब इसी गुणान्तर या स्वरान्तर को लेकर मध्यम स्वर की आन्दोलन–संख्या मालूम की जाए, तो वह इस प्रकार निकलेगी – 4÷3 × 240 = 320, क्योंकि षड़ज की मानी हुई आन्दोलन–संख्या 240 है और षड़ज मध्यम का स्वरान्तर 4/3 है, इसलिए 4/3 को 240 से गुणा करके आसानी से मध्यम की आन्दोलन–संख्या 320 निकल आई। इसी प्रकार पंचम की आन्दोलन संख्या निकलेगी। यह था तार की लम्बाई से आन्दोलन–संख्या निकालने का नियम। अब आन्दोलन–संख्या से स्वरों की लम्बाई किस प्रकार निकाली जाती है।

1.8.4 आन्दोलन–संख्या से लम्बाई निकालना :–

अगर दो स्वरों की आन्दोलन–संख्या हमें मालूम हो, तो उनकी लम्बाई भी निकाली जा सकती है और यदि उनमें से एक ही स्वर की लम्बाई मालूम हो, तो गुणान्तर निकाल कर लम्बाई मालूम की जाती है। उदाहरण के लिए षड़ज और मध्यम की आन्दोलन–संख्याओं से हमें मध्यम स्वर की लम्बाई मालूम करनी है, तो इस प्रकार करेंगे–– षड़ज = 240 इंच, मध्यम = 320 इंच, इनका गुणान्तर हुआ 320/240 = 4/3, इस गुणान्तर का षड़ज की लम्बाई 36 इंच में भाग दिया गया, 36÷4/3 = 27 इंच मध्यम की लम्बाई निकल आई। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि लम्बाई से आन्दोलन निकालने में स्वरान्तर का षड़ज की आन्दोलन–संख्या से गुणा करना होगा, और जब आन्दोलन से लम्बाई निकाली जाएगी, तब षड़ज की लम्बाई में उस स्वरान्तर का भाग देना होगा।

स्वर	शुद्ध या विकृत	तार की लम्बाई	आन्दोलन–संख्या
सा	शुद्ध	36 इंच	240
रे	कोमल विकृत	34 इंच	254 2/17
रे	तीव्र (शुद्ध)	32 इंच	270
ग	कोमल विकृत	30 इंच	288
ग	तीव्र (शुद्ध)	28 2/3 इंच	301 17/43
म	कोमल (शुद्ध)	27 इंच	320
म	तीव्र (विकृत)	25 1/2 इंच	338 14/17
प	शुद्ध	24 इंच	360
ध	कोमल (विकृत)	22 2/3 इंच	381 3/17
ध	तीव्र (शुद्ध)	21 1/3 इंच	405

<u>नि</u>	कोमल (विकृत)	20 इंच	432
नि	तीव्र (शुद्ध)	19 1/6 इंच	452

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –6

प्र0.1 स्वरों की आन्दोलन संख्या से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 आन्दोलन संख्या ज्ञात करने के क्या आधार हैं ?

प्र0.3 किसी स्वर की आन्दोलन संख्या किस प्रकार निकाली जाती है ?

1.9 स्वरों में श्रुतियों को बांटने का नियम :–

हमारे पुराने और नए दोनों ग्रन्थकार एक सप्तक में नीचे के 'सा' से ऊपर के 'सा' तक एक–दूसरे से ऊँचे, इस क्रम में संगीतोपयोगी मुख्य 22 नाद अथवा 22 श्रुतियां मानते हैं और इन्हीं 22 श्रुतियों पर अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं। दोनों ग्रंथकार 22 श्रुतियों पर ही सात शुद्ध स्वरों की स्थापना करने के विषय में एक ही नियम को स्वीकार करते हैं और वह नियम है –––

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडजमध्यमपंचमाः।

द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

—— श्री मल्लक्ष्य संगीतम्

अर्थात् –– षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद और गान्धार में दो–दो श्रुतियां तथा ऋषभ और धैवत में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार 22 श्रुतियाँ सात स्वरों में बांटी गई।

निम्न चित्र में इसे स्पष्ट किया गया है :–

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22

नि सा रे ग म प ध नि

अर्थात् चौथी श्रुति पर षडज, सातवीं पर ऋषभ, नवीं पर गांधार, तेहरवीं पर मध्यम, 17वीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत तथा 22वीं पर निषाद स्थापित किया गया है। ये प्राचीन तथा मध्यकालीन संगीत विद्वानों के शुद्ध स्वर थे। इनमें आधुनिक दृष्टि से 'ग और नि' स्वर कोमल थे अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि आधुनिक काल तक के शुद्ध स्वर काफी थाट सदृश थे।

इसके विपरीत कुछ आधुनिक विद्वानों व ग्रंथकारों ने, पहले स्वरों को रखा, बाद में उनकी श्रुतियों को। ऐसा करने पर प्राचीन अथवा मध्यकालीन संगीत विद्वानों के स्वर आधुनिक संगीत विद्वानों के स्वरों से भिन्न हो गए। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल के निषाद को आधुनिक काल का षडज मान लिया गया। इस प्रकार इस आधार पर अब श्रुतियों का क्रम सप्तक में इस प्रकार हो गया –––

प्राचीन काल : नि – – – सा – – रे – ग – – – म – – – प – – ध – नि।

आधुनिक काल : सा – – – रे – – ग – म – – – प – – – ध – – नि – सां।।

4 3 2 4 4 3 2

अब श्रुति व्यवस्था :–

ऐसा करने पर सबसे बड़ा अन्तर यह हुआ कि आधुनिक काल से पूर्व के स्वर हमारे काफी थाट जैसे स्वर थे, जो अब बिलावल थाट जैसे हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –7

प्र0.1 प्राचीन और आधुनिक विद्वानों ने स्वर–श्रुति विभाजन किस नियम पर स्वीकार किया है ?

प्र0.2 प्राचीन और आधुनिक स्वर–श्रुति व्यवस्था का क्रम बताइए ?

1.10 स्वर और श्रुति की तुलना :–

स्वर और श्रुति की तुलना में चार सिद्धांत बताए गए हैं :–

1. श्रुतियां 22 होती हैं और स्वर सात।

2. श्रुतियों का परस्पर अन्तराल स्वरों की अपेक्षा कम होता है जबकि स्वरों का परस्पर अन्तराल श्रुतियों की अपेक्षा अधिक होता है।

3 कण, मींड और सूत द्वारा जब तक किसी सुरीली ध्वनि को व्यक्त किया जाता है, तब तक तो वह 'श्रुति' है और जहाँ उस पर ठहराव हुआ तब वह स्वर कहलाती है।

4 श्रुति और स्वर की तुलना में अहोबल पंडित ने 'संगीत परिजात' में सर्प और कुंडली का जो उदाहरण दिया है उसके अनुसार सर्प की कुंडली तो श्रुति है और सर्प स्वर है। कुंडली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है, उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर स्वर स्थित है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –8

प्र0.1 स्वर और श्रुति के कोई दो अन्तर बताइए ?

1.11 सारांश :–

एक सप्तक के अन्तर्गत् एक–दूसरे से ऊँचे असंख्य नाद हो सकते हैं और वे एक–दूसरे से इतने निकट होंगे कि उन्हें सुन कर स्पष्ट रूप से पहचान लेना और किन्हीं दो निकट की श्रुतियों में भेद जान लेना अथवा उन्हें गाना–बजाना असम्भव है। अतः प्राचीन शास्त्रकारों ने यह जानने का प्रयत्न किया कि एक सप्तक के अन्तर्गत् अधिक से अधिक कितने नाद स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं और पृथक–पृथक गाए–बजाए जा सकते हैं। विद्वानों ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि एक सप्तक के अन्तर्गत् अधिक से अधिक बाईस नादों का

पारस्परिक अन्तर स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है तथा कंठ द्वारा गाया जा सकता है। अतः प्राचीन शास्त्रकारों ने केवल बाईस नादों को श्रुति की संज्ञा दी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संगीत में श्रुति का संकुचित अर्थ लिया गया है। संगीत में नाद के स्थान पर श्रुति शब्द प्रयोग किया जाता है, क्योंकि प्रत्येक श्रुति नाद है किन्तु प्रत्येक नाद श्रुति नही है। इसका कारण स्पष्ट है कि असंख्य नादों में से केवल 22 नादों को ही श्रुति कहा गया है। 22 श्रुतियों में से कुछ ध्वनियां ऐसी चुन ली गई जिनकी आवाज़ें आपस में लगभग ऊँची–नीची है। इन्हीं ध्वनियों को स्वर कहा गया। जो कि कुल मिला कर सात शुद्व तथा पांच विकृत कुल मिला कर 12 स्वर माने जाते हैं।

1.12 शब्दकोष :–

1 रेंकना – गधे की आवाज़

2 स्वरत्व – स्वर का तत्व

3 चित – हृदय

4 प्रतिध्वनि – गूँज या परिवर्तित होकर सुनने वाली ध्वनि

5 अनुरणनहीन – गूँज वहीन

6 अभिघात – प्रहार या चोट पहुँचाना

7 स्निग्ध – कोमल

8 वांछनीय – चाहने योग्य

9 भावाभिव्यक्ति – भाव को व्यक्त करना

10 संगीतोपयोगीत्व – संगीत में प्रयोग होने योग्य

1.13 स्वयं परिक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 श्रुति की परिभाषा क्या है ?

उ0. वह नाद जिसे हम स्पष्ट रूप से सुन सकें, समझ सकें तथा किन्हीं भी दो नादों के बीच का अन्तर बता सकें, वही 'श्रुति' कहलाता है। शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है, ''श्रुयते इति श्रुतिः'' अर्थात् श्रुति वह है जिसे हम सुन सकें। सुनने का तात्पर्य केवल सुनना ही नहीं अपितु सुन कर समझ लेना भी है।

अतः साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि, स्पष्ट रूप से सुनी जा सकने वाली आवाज़ को हम श्रुति कहते हैं। वह आवाज़, जो गीत में प्रयुक्त की जा सके और एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, ''श्रुति'' कहलाती है।

प्र0.2 अलग–अलग ग्रन्थकारों ने कितनी–कितनी श्रुतियां मानी हैं ?

उ0. भरत ने नाटय शास्त्र में 22 श्रुतियों को ही प्राकृतिक एवं व्यावहारिक माना है। ब्रह्मस्वरूप ने भी 'थ्योरी आफ म्यूज़िक' में लिखा है कि एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ ही वैज्ञानिक हैं। दूसरी और हनुमत के मतानुसार एक सप्तक में 18 श्रुतियाँ बताई गई हैं। अकलंका श्रीनिवास एक सप्तक में 24 श्रुतियाँ मानते हैं। युनानियों तथा ईरानियों ने भी 24 श्रुतियों को माना है लेकिन हमारे प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों ही मानी हैं और यह व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही भी माना गया है और प्राचीन समय से लेकर आज तक मान्य है।

प्र0.3 भातखण्डे जी ने श्रुति विभाजन कितने भागों में किया है ?

उ0. **भातखण्डे द्वारा श्रुति विभाजन :–**

संगीताचार्य चतुर ने श्रुतियों का प्रकृति के अनुसार विभाजन किया है। उन्होंने ये विभाजन चार भागों में किया है। जैसे ––

1. उच्च व रूक्ष ध्वनि को 'वात्तज'।
2. गंभीर व घनशील ध्वनि को 'पित्तज'।
3. मधुर व सुकुमार ध्वनि को 'कफज'।
4. उपरोक्त सभी के मिश्रण को 'सन्नीपात' कहा गया।

प्र0.4 कोहल ग्रन्थकार ने कितनी श्रुतियां मानी हैं ?

उ0. कोहल ने 'कोहलम' ग्रन्थ में 66 श्रुतियों का वर्णन किया है। उनके अनुसार मन्द्र, मध्य तथा तार इन तीनों सप्तकों की कुल श्रुतियों की संख्या 22×3 = 66 होती है।

प्र0.5 श्रुति के कितने भेद बताए गए हैं ?

उ0. **श्रुतियों के दो भेद बताए गए हैं :–**

1. स्वर श्रुतियां :– स्वर श्रुतियां मधुर होती हैं। स्वर श्रुतियां गिनती में सात होती हैं।

2. अंतः श्रुतियां :– अंतः श्रुतियां कर्कष होती हैं। यह संख्या में 13 होती हैं।

प्र0.6 स्वर श्रुति तथा अंतः श्रुति की क्या विशेषता है ?

उ0. स्वर श्रुति तथा अंतः श्रुति की विशेषता यह है कि जब तक किसी श्रुति पर स्वर स्थापित नहीं किया जाता तब तक वह श्रुति स्वरत्व पाने की क्षमता रखती है और जब किन्ही श्रुतियों पर स्वर स्थापना कर दी जाती है तब स्वरों वाली श्रुतियां स्वर श्रुति तथा अन्य श्रुतियां अंतः श्रुतियां बन जाती हैं।

प्र0.7 स्वर की परीभाषा बताइए ?

उ0. **स्वर की परिभाषा :–**

''**स्व**'' का अर्थ है '**स्वयं**' और ''**र**'' का अर्थ है राजृ धातु से '**राजते**' अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित हो वह ''**स्वर**'' है।

''स्वयं जो राजते नाद स स्वर परिकीर्तितः'' अर्थात् जो नाद स्वयं शोभित अथवा दिव्य है अर्थात् स्वयं मधुर होता हो या ''स्वयं रंजयति इति'' अर्थात् जो स्वयं में रंजक हो उसे ''**स्वर**'' कहते हैं।

प्र0.8 शारंगदेव ने स्वर की क्या परीभाषा बताई है ?

उ0. **श्रुत्यनन्तर भावीयः स्निग्धोअनुरणनात्मक।**

स्व तो रंजयति श्रोतृचिंत स स्वर उच्चते।

शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में दी स्वर की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति के पश्चात् तुरन्त उत्पन्न होने वाला नाद, जो सुनने वालों के चित का स्वतः रंजन कर सकता है वह स्वर कहलाता है।

प्र0.9 डा.लालमणी मिश्र के अनुसार ध्वनि को स्वर की संज्ञा पाने के लिए क्या गुण होने चाहिए ?

उ0. डा0 लालमणी मिश्र का कहना है कि किसी भी ध्वनि को स्वर की संज्ञा पाने के लिए निम्न गुणों से युक्त होना आवश्यक है –

1) कानों तक सुनाई पड़ने की शक्ति

2) वर्ण प्रियता

3) स्थिरता

4) मधुरता

5) रंजकता

6) संगीतोपयोगीत्व

प्र0.10 शुद्ध और विकृत स्वरों से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **शुद्ध स्वर–**

जब स्वर अपने नियत स्थान पर पहले से ही स्थित होते हैं तब उन्हें शुद्ध स्वर कहते हैं। सा, रे, ग, म, प, ध, नि ये सात शुद्ध स्वर कहलाते हैं। ये सातों स्वर अपने उचित स्थान पर नियत रहते हैं।

विकृत स्वर–

सा और प के अतिरिक्त रे, ग, म, ध, नि ये पाँचों स्वर अपने नियत स्थान से हटते हैं इस लिए इन्हें विकृत स्वर कहते हैं। विकृत का अर्थ है अपने स्थान से हटा हुआ। अतः जब रे, ग, म, ध, नि शुद्ध स्वरों को उनके नियत स्थान से ऊँचा या नीचा किया जाता है, तब उन्हें विकृत स्वर कहा जाता है।

विकृत स्वर दो प्रकार के बताए गए हैं– कोमल विकृत तथा तीव्र विकृत।

प्र0.11 संगीत में प्रयोग होने वाले 12 स्वरों के नाम बताइए ?

उ0. **संगीत के 12 स्वर :–**

1) सा

2) कोमल रे

3) शुद्ध रे

4) कोमल ग

5) शुद्ध ग

6) शुद्ध म

7) तीव्र म

8) प

9) कोमल ध

10) शुद्ध ध

11) कोमल नि

12) शुद्ध नि

इन्हीं स्वरों को अंग्रेज़ी भाषा में 'सी डी इ एफ जी ए बी' (C D E F G A B) कहते हैं। इन्हीं स्वरों को इटैलियन भाषा में 'डो रे मी फा सोल ला सी' (Do Re Mi Fa Sol La Si) कहते हैं।

प्र0.12 स्वरों की आन्दोलन संख्या से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **स्वरों की आन्दोलन संख्या :–**

जब हम वीणा, सितार या तानपूरे के किसी तार को छेड़ते या बजाते हैं, तो उसे तार से एक झनकार पैदा होती है। उस झनकार द्वारा एक सैकिंड में हवा में जो कंपन पैदा होता है, उसे ही 'आन्दोलन' कहते हैं। आन्दोलन–संख्या जितनी अधिक होती है, नाद उतना ही ऊँचा होता है और आन्दोलन–संख्या जितनी कम होती है, नाद उतना ही नीचा होता है।

प्र0.13 आन्दोलन संख्या ज्ञात करने के क्या आधार हैं ?

उ0. **स्वरों की आन्दोलन–संख्या निकालना :–**

ऊपर बताया जा चुका है कि जितनी ही आवाज़ ऊँची होगी, उतने ही आन्दोलन अधिक होंगे और आवाज़ जितनी नीची होती जाएगी, आन्दोलन–संख्या उसी अनुपात से कम होती जाएगी।

विज्ञान के पंडितों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सबसे नीची आवाज़ द्वारा एक सैकिंड में 16 आन्दोलन हो सकते हैं और सबसे ऊँची आवाज़ के एक सैकिंड में 38000 आन्दोलन हो सकते हैं। यह ऊँची आवाज़ लगभग ग्यारह सप्तक ऊँचाई की होगी। इस हिसाब से षड़ज स्वर की आन्दोलन–संख्या 240 मान कर हमारे शास्त्रकारों ने तथा पश्चिमी विद्वानों ने बारह स्वरों की आन्दोलन–संख्या नियत की है।

स्वरों की आन्दोलन–संख्या मालूम करने के तीन आधार हैं :–

क. जिस स्वर की आन्दोलन–संख्या मालूम करनी हो, उसके तार की लम्बाई का का नाप।

ख. षड़ज स्वर के तार की लम्बाई।

ग. षड़ज स्वरों की आन्दोलन–संख्या।

प्र0.14 प्राचीन और आधुनिक विद्वानों ने स्वर–श्रुति विभाजन किस नियम पर स्वीकार किया है ?

उ0. हमारे पुराने और नए दोनों ग्रन्थकार एक सप्तक में नीचे के 'सा' से ऊपर के 'सा' तक एक–दूसरे से ऊँचे, इस क्रम में संगीतोपयोगी मुख्य 22 नाद अथवा 22 श्रुतियां मानते हैं और इन्हीं 22 श्रुतियों पर अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं। दोनों ग्रंथकार 22 श्रुतियों पर ही सात शुद्ध स्वरों की स्थापना करने के विषय में एक ही नियम को स्वीकार करते हैं और वह नियम है –––

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडजमध्यमपंचमाः।

द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

—— श्री मल्लक्ष्य संगीतम्

अर्थात् –– षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद और गान्धार में दो–दो श्रुतियां तथा ऋषभ और धैवत में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार 22 श्रुतियाँ सात स्वरों में बांटी गई।

प्र0.15 प्राचीन और आधुनिक स्वर–श्रुति व्यवस्था का क्रम बताइए ?

उ0. निम्न चित्र में इसे स्पष्ट किया गया है :–

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22

नि सा रे ग म प ध नि

अर्थात् चौथी श्रुति पर षडज, सातवीं पर ऋषभ, नवीं पर गांधार, तेहरवीं पर मध्यम, 17वीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत तथा 22वीं पर निषाद स्थापित किया गया है। ये प्राचीन तथा मध्यकालीन संगीत विद्वानों के शुद्ध स्वर थे। इनमें आधुनिक दृष्टि से 'ग और नि' स्वर कोमल थे अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि आधुनिक काल तक के शुद्ध स्वर काफी थाट सदृश थे।

इसके विपरीत कुछ आधुनिक विद्वानों व ग्रंथकारों ने, पहले स्वरों को रखा, बाद में उनकी श्रुतियों को। ऐसा करने पर प्राचीन अथवा मध्यकालीन संगीत विद्वानों के स्वर आधुनिक संगीत विद्वानों के स्वरों से भिन्न हो गए। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल के निषाद को आधुनिक काल का षडज मान लिया गया। इस प्रकार इस आधार पर अब श्रुतियों का क्रम सप्तक में इस प्रकार हो गया –––

प्राचीन काल : नि – – – सा – – रे – ग – – – म – – – प – – ध – नि।

आधुनिक काल : सा – – – रे – – ग – म – – – प – – – ध – – नि – सां।।

4 3 2 4 4 3 2

अब श्रुति व्यवस्था :–

ऐसा करने पर सबसे बड़ा अन्तर यह हुआ कि आधुनिक काल से पूर्व के स्वर हमारे काफी थाट जैसे स्वर थे, जो अब बिलावल थाट जैसे हैं।

प्र0.16 स्वर और श्रुति के कोई दो अन्तर बताइए ?

उ0. 1. श्रुतियां 22 होती हैं और स्वर सात।

2. श्रुतियों का परस्पर अन्तराल स्वरों की अपेक्षा कम होता है जबकि स्वरों का परस्पर अन्तराल श्रुतियों की अपेक्षा अधिक होता है।

1.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत सार, वीणा मानकरण, राज पब्लिशर, जालन्धर।

2. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाह

3. संगीत निबन्ध माला, पं. जगदीश नारायण पाठक, प्रकाशक – पाठक पब्लिशर, महाजनी टोला, इलाहाबाद।

1.15 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 श्रुति की व्याख्या कीजिए।

प्र0.2 स्वर का वर्णन कीजिए तथा स्वरों में श्रुतियों के बांटने के नियम का वर्णन कीजिए।

प्र0.3 स्वरों की आन्दोलन संख्या किस प्रकार निकाली जाती है ?

LESSON - II

Relationship between Shruti and Swara with special refrence to Bharat, Sharangdev, Bhatkhande and Acharya Brihaspati.

STRUCTURE :

2.1 भूमिका

2.2 उदेश्य

2.3 श्रुति और स्वर की परिभाषा

2.4 श्रुति–स्वर सम्बन्ध

2.5 श्रुतियों पर स्वर स्थापना

2.5.1 प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों के श्रुति–स्वर स्थान

2.6 भरत का श्रुति–स्वर सम्बन्ध एवं स्थापना

2.6.1 भरत की सारणा चतुष्टई

2.6.2 भरत की श्रुति–स्वर स्थापना

2.7 शारंगदेव की सारणा प्रक्रिया

2.7.1 शारंगदेव की श्रुति–स्वर स्थापना

2.8 भातखण्डे का श्रुति–स्वर सम्बन्ध एवं स्थापना

2.8.1 भातखण्डे की श्रुति–स्वर स्थापना

2.9 प्रमाण श्रुति

2.10 आचार्य बृहस्पति का श्रुति–स्वर सम्बन्ध

2.10.1 आचार्य बृहस्पति की प्रमाण श्रुति

2.10.2 श्रुति दर्पण पर सारणा क्रिया

2.11 सारांश

2.12 शब्दकोष

2.13 स्वयं निरीक्षण प्रश्न–उत्तर

2.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.15 महत्वपूर्ण प्रश्न

2.1 भूमिका :–

श्रुति और स्वर संगीत के दो महत्वपूर्ण आधार हैं जिनके बिना संगीत की कल्पना भी नही कर सकते। इन दोनों में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है जैसे मोती और माला, दिया और बाती इत्यादि। संगीत में यह भी कहा जाता है कि एक प्रकार से श्रुति स्वर की जननी है इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर (स्पर्श) मात्र से जो क्षणिक ध्वनि उत्पन्न होती है, वह श्रुति है और तुरन्त ही आवाज़ स्थिर हो गई तो वह स्वर बन जाता है। श्रुति और स्वर के इस सम्बन्ध को संगीत के अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से वर्णित किया है।

2.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य श्रुति और स्वर के विषय में जानना और इन दोनों में परस्पर सम्बन्ध का भरत, शारंगदेव, भातखण्डे और आचार्य बृहस्पति के संदर्भ से जानकारी प्राप्त करना है।

2.3 श्रुति और स्वर की परिभाषा :–

"श्रुति" स्वर की उत्पत्ति "श्रु" धातु से हुई है जिसका अर्थ है "सुनना" अतः श्रुति शब्द का अर्थ हुआ "सुना हुआ"। प्राचीन ग्रन्थकार श्रुति की परिभाषा इस प्रकार देते हैं, "श्रुयते इति श्रुति" अर्थात् जो सुनाई दे उसे श्रुति कहते हैं। परन्तु वास्तव में हम संगीत में प्रत्येक सुनाई देने वाली ध्वनि को श्रुति नही कह सकते क्योंकि संगीत में तो हम उसी ध्वनि को संगीत कह सकते हैं जो संगीतोपयोगी हो।

''अभिनवराग मंजरी'' में श्रुति की परिभाषा के अन्तर्गत लिखा है कि जो आवाज़ गीत में प्रयोग की जा सके और एक–दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहचानी जा सके उसे ''श्रुति'' कहते हैं। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि जो आवाज़ स्पष्ट, संगीतोपयोगी और एक–दूसरे से अलग पहचानी जाए वह ''श्रुति'' है।

श्रुति भारतीय संगीत की जननी है। श्रुति से तात्पर्य उन सूक्ष्मतर ध्वनि अन्तरों से है जिनसे एक सप्तक बनता है। इसके अतिरिक्त श्रुतियाँ ही शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान को निर्धारित करती हैं। अतः अब हम श्रुति की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– '' वह आवाज़ जो कानों से सुनी, समझी जाए, जिसकी ऊँचाई, निचाई के पृथकत्व का स्पष्ट अनुभव किया जा सके, जो स्वरों की शुद्ध–अशुद्ध, विकृत–अविकृत अवस्था का कारण हो, जो संगीतोपयोगी एवं रंजक हो, जिसे कण्ठ से उच्चरित किया जा सके और वाद्य यंत्रों में बजा सके वही अनुरंजक ध्वनि श्रुति है।''

''स्वर मेल कलानिधि'' में रामामात्या लिखते हैं कि ''नाद के 22 भेद माने गए हैं, जो स्पष्ट सुने जा सकते है, अतः उन्हें श्रुति कहते हैं। उनका कहना है कि ह्रदय स्थान में 22 नाड़ियाँ हैं, उन्हीं में से वायु के आघात से 22 श्रुतियाँ एक से दूसरी ऊँची इस प्रकार उत्पन्न होती है।'' इससे स्पष्ट है कि श्रुति संख्या 22 हैं।

पं0 अहोबल 66 नाद श्रुतियों का वर्णन ''संगीत पारिजात'' में करते हैं। उनका कथन है कि एक सप्तक में 66 श्रुतियाँ हैं जो सुनी जा सकती हैं परन्तु 22 श्रुतियाँ ऐसी हैं जो स्वरों में प्रयुक्त की जा सकती हैं। हमारे प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों ने 22 श्रुतियाँ ही मानी हैं।

''स्वर'' वह संगीतोपयोगी आवाज़ जो स्पष्ट और स्वयं मधुर हों, जिसे सुन कर मानव मन को प्रसन्नता की अनुभूति हो, वह स्वर कहलाती है। पं0 अहोबल के विचारानुसार जो अपने आप ही सुनने वालों के चित को आकर्षित करते हैं, वे स्वर कहलाते हैं।

''संगीत दर्पण'' के लेखक दामोदर पंडित की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति उत्पन्न करने के बाद जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित होता है उसे स्वर समझना चाहिए।

पुण्डरिक विठ्ठल के अनुसार अनुरणनहीन नाद को श्रुति कहते हैं और जब श्रुति अनुरणन हो जाती है तब वह स्वर बन जाती है।

शारंगदेव कृत ''संगीत रत्नाकर'' में दी स्वर की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति के पश्चात् तुरन्त उत्पन्न होने वाला नाद, जो सुनने वालों के चित का स्वतः रंजन कर सकता है, वह स्वर कहलाता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि स्वर वह संगीतोपयोगी नाद है जो श्रुति के अनन्तर स्वयं उत्पन्न होता है, जो अनुरंजक है, जिसकी आवाज़ स्थिर और गूँजदार है, जो मानव चित को प्रसन्न करने वाला है और जो नियत श्रुति स्थान पर स्थित रहते हुए भी अपने स्थान से आगे–पीछे जाने पर विकृत होता है, जो राग का जनक है और जो आत्मा की भावाभिव्यक्ति का साधन है।

हमारे संगीतकारों ने 22 श्रुतियों में से 12 स्वर चुन कर अपना गायन कार्य शुरू किया। इन 12 स्वरों में से 7 शुद्ध और 5 विकृत स्वर माने गए।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 'श्रुति भारतीय संगीत की जननी है', इसे संक्षेप में समझाइए।

प्र0.2 अलग–अलग ग्रन्थकारों के अनुसार स्वर की परिभाषा दीजिए।

2.4 श्रुति–स्वर सम्बन्ध :–

जो सुनी जा सकती है, वह **"श्रुति"** कहलाती है। स्वर और श्रुति में परस्पर अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। स्वर और श्रुति में भेद इतना ही है, जितना सर्प और उसकी कुन्डली में अर्थात् इन 22 श्रुतियों में से जो श्रुतियाँ किसी राग विशेष में प्रयुक्त होती है, वे स्वर कहलाती हैं। जब किसी अन्य राग में इन स्वरों के अतिरिक्त अन्य श्रुतियाँ काम में ली जाती हैं, तो जो श्रुतियाँ अब काम में आईं, वे स्वर बन गई, और जो स्वर छोड़ दिए गए, वे पुनः श्रुतियाँ बन गई। उदाहरण के लिए यदि हम राग मालकौंस गाते हैं, तो जिन श्रुतियों पर यह राग गाया–बजाया जाएगा, वे स्वर कहलाएंगी, लेकिन फिर यदि हम राग हिन्डोल गाते हैं, तो जो श्रुतियाँ राग मालकौंस में प्रयुक्त होते समय स्वर बन गई थीं, अब उन्हें छोड़ना पड़ेगा। अतः वे पुनः श्रुतियाँ बन जाएंगी और जो श्रुतियाँ राग हिंडोल में प्रयुक्त होंगी वे स्वर कहलाएंगी। इस प्रकार जब गायन–वादन में श्रुति का प्रयोग नहीं होता तो वह कुण्डली की भान्ति सोई हुई रहती हैं और जब इनका प्रयोग किसी राग विशेष में होता है तो वह सर्प की भान्ति क्रियाशील हो जाती हैं। इस आधार पर श्रुति को कुण्डली और स्वर को सर्प की उपमा दी गई है। इस प्रकार श्रुति और स्वर में विशेष सम्बन्ध है। विद्वानों का कहना है कि कण, मींड, स्पर्श, सूत आदि श्रुति कहलाते हैं और उन पर ठहर जाने से वही स्वर कहलाते हैं।

श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनित अथवा गूँज का रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित हो तथा जिसे किसी

अन्य नाद की आवश्यकता नही होती, उसे स्वर कहते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर (स्पर्श) मात्र से जो क्षणिक ध्वनि उत्पन्न होती है, वह श्रुति है और तुरन्त ही आवाज़ स्थिर हो गई तो वह स्वर बन जाता है।

श्रुति और स्वर देखने में दो नाम अवश्य हैं लेकिन ध्यान पूर्वक देखा जाए तो श्रुति और स्वर में कोई विशेष अन्तर नही है, क्यों कि दोनों ही संगीत उपयोगी आवाज़ें हैं। दोनों का ही प्रयोग गायन–वादन में होता है और दोनों की आवाज़े स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। प्राचीन पंडितों ने नाद से 22 स्थान ऐसे चुने जिनकी आवाज़ परस्पर ऊँची–नीची है और जो संगीत में उपयोगी सिद्ध हुई, उन्हें श्रुति कहा।

इसके बाद उन 22 श्रुतियों में से कुछ ध्वनियाँ ऐसी चुनी जो परस्पर अन्तराल पर हैं, वह बहुत ही सूक्ष्म हैं, जिन्हें संगीतज्ञों के साथ–साथ साधारण संगीत प्रेमी भी पहचान लेते हैं, उसे स्वर कहते हैं। इस प्रकार श्रुति और स्वर में एक घनिष्ट सम्बन्ध है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 श्रुति और स्वर के आपसी सम्बन्ध को बताइए।

2.5 श्रुतियों पर स्वर स्थापना :–

हमारे प्राचीन ग्रंथकार भरत, पं0 शारंगदेव, मध्यकालीन ग्रंथकार पं0 अहोबल, श्रीनिवास, कवि लोचन और ह्रदयनारायण देव और आधुनिक ग्रंथकार एवं संगीतकार पं0 भातखण्डे और आचार्य बृहस्पति आदि ने 22 श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों में बाँटने के लिए प्रसिद्ध परम्परागत निम्न नियम माना है :–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड़जमध्यमपंचमा।

द्वेद्वे निषादगांधारो तिस्त्री रिषभधैवतो।।

भावार्थः– षड़ज, मध्यम, पंचम स्वरों की चार–चार श्रुति, रिषभ और धैवत की तीन–तीन और गांधार तथा निषाद की दो–दो श्रुतियाँ हैं।

उपरोक्त नियमानुसार सप्तक के सा, रे, ग, म, प, ध, नि स्वर क्रमशः 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 के श्रुति अन्तर पर स्थापित किए गए हैं। स्वर स्थानों के विषय में प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों में मतभेद है। प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते हैं। जैसे सा की चार श्रुतियाँ हैं तो सा का स्थान चौथी श्रुति पर निश्चित है परन्तु आधुनिक ग्रंथकार इसके विपरीत अपना प्रत्येक

शुद्ध स्वर अपनी पहली श्रुति पर स्थित करते हैं। जैसे कि सा की चार श्रुतियाँ हैं तो सा का स्थान पहली श्रुति पर होगा।

प्राचीन ग्रंथकारों की शुद्ध स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर इस प्रकार हुई है। षड़ज चौथी श्रुति पर, रिषभ सातवीं पर, गान्धार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थापित है।

आधुनिक ग्रंथकार अपना प्रत्येक स्वर पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं अतः उनकी स्वर स्थापना इस प्रकार होगीः– षड़ज पहली श्रुति पर, रिषभ पाँचवीं पर, गान्धार आठवीं पर, मध्यम दसवीं पर, पंचम चौदहवीं श्रुति पर, धैवत अठारवीं श्रुति पर और निषाद इक्कसवीं श्रुति पर स्थापित है।

प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों के सात शुद्ध स्वरों के स्थान इस प्रकार निश्चित हैं :–

2.5.1 प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों के श्रुति–स्वर स्थान :–

श्रुति संख्या	श्रुति नाम	प्राचीन, मध्यकालीन स्वर स्थान	आधुनिक स्वर स्थान
1	तीव्रा		सा
2	कुमुद्वती		
3	मन्दा		
4	छन्दोवती	सा	
5	दयावती		रे
6	रंजनी		
7	रक्तिका	रे	
8	रौद्री		ग
9	क्रोधी	ग	
10	वज्रिका		म
11	प्रसारिणी		
12	प्रीति		
13	मार्जिनी	म	
14	क्षिती		प
15	रक्ता		
16	संदीपनी		
17	आलापिनी	प	
18	मदन्ती		ध
19	रोहिणी		

20 21 22	रम्या उग्रा क्षोभिणी	ध नी	 नी

उपरोक्त मानचित्र से स्पष्ट है कि प्राचीन और आधुनिक ग्रंथकारों में श्रुति अन्तर में समानता होने पर भी स्वर–स्थानों में अन्तर है। कारण ये है कि प्राचीन, मध्यकालीन ग्रंथकारों के शुद्ध स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थित हैं और आधुनिक ग्रंथकारों के शुद्ध स्वर अपनी पहली श्रुति पर स्थित हैं।

तीनों कालों के ग्रंथकारों ने एक ही सिद्धांत पर लेकिन अलग–अलग प्रकार से 22 श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना की है। इनमें शारंगदेव और भातखण्डे जैसे ग्रंथकारों ने भी 22 श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना भरत के सिद्धांत के अनुसार ही की है लेकिन अलग–अलग ढंग से की है। प्राचीन ग्रंथों में प्रमुख ग्रंथ भरत का ''नाट्यशास्त्र'' तथा शारंगदेव का ''संगीत रत्नाकर'' माना जाता है। शारंगदेव कृत ''संगीत रत्नाकर'' का रचनाकाल 13वीं शताब्दी का माना जाता है। शारंगदेव ने अपने शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की है। कहने का अर्थ ये है कि यदि 'सा' की चार श्रुतियाँ हैं तो 'सा' की स्थापना इन चार श्रुतियों की अन्तिम श्रुति यानी चौथी पर की है। इस प्रकार उनके सात शुद्ध स्वर श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित होंगे :– सा – चौथी पर, रे – सातवीं पर, ग – नवीं श्रुति पर, म – तेरहवीं पर, प – सत्रहवीं श्रुति पर, ध – बीसवीं श्रुति पर तथा नि – बाईसवीं श्रुति पर स्थापित होगा। शारंगदेव के ग्रंथ में शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर 14 स्वरों का वर्णन मिलता है। भरत एवं शारंगदेव के शुद्ध और विकृत कुल मिलाकर क्रमशः 9 और 14 स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर इस प्रकार की गई है –

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक ग्रन्थकारों के श्रुति–स्वर–स्थान को तालिका द्वारा दर्शाइए।

प्र0.2 प्राचीन व आधुनिक ग्रन्थकारों ने किस आधार पर 22 श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों में विभाजित किया ?

2.6 भरत का श्रुति–स्वर सम्बन्ध एवं स्थापना :–

सारिका का अर्थ है पर्दा जिनके ऊपर जाने वाले सितार, वीणा आदि वाद्य के तारों को उंगली या अन्य किसी वस्तु से दबा कर स्वर निकाला जाता है। सारिकाओं को आगे–पीछे सरकाना ''सारणा'' कहलाता है और जब सारिकाओं अथवा तारों को यथा स्थान मिला कर 22 श्रुतियों और उन पर स्थित भिन्न–भिन्न स्वरों तथा ग्रामों का ठीक–ठीक ज्ञान प्राप्त किया जाता है तो यही सारणा क्रिया कहलाती है।

सारणा चतुष्टयी क्रिया के लिए एक ऐसा तानपूरा लिजिए, जिसकी डाँड सपाट हो, अर्थात् बीच से उठी हुई न हो। इस तानपूरे पर पर्दे भी सपाट वीणा की तरह हों, अर्थात् वे सितार के परदों की भाँति बीच में उठे हुए न हों। तानपूरे में पाँच खूँटियाँ हों। अब पाँच तार एक जैसे चढ़ा लीजिए। घुड़च बिलकुल सीधी हो, तनिक भी आड़ी–तिरछी न हो। परदे भी बिलकुल सीधे रहें। बस यही हमारा श्रुति दर्पण होगा। इस पर नियम पूर्वक षड़ज ग्राम के परदे मिला लीजिए। इसके पाँच तारों को भी समान ध्वनि में मिला लिजिए। इस श्रुति दर्पण में बाँई ओर वाले तार को हम पहला तार कहेंगे। अन्य तार क्रमशः दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ तार कहलाएंगे।

पहले तार को षड़ज इत्यादि के परदों पर दबा कर छेड़ने से जो सप्तक बोलेगा, उसे हम ''मूल सप्तक'' कहेंगे। यह पूर्वोक्त पद्धति के ''अचल सप्तक'' का काम देगा।

प्रथम सारणा :–

दूसरे तार को इतना उतारिए कि ''मूल सप्तक'' के ऋषभ के साथ उसके पंचम का सम्वाद षड़ज–मध्यम–भाव से होने लगे। इतना करने पर हम देखेंगे कि दूसरा तार 'मूल सप्तक के तार की अपेक्षा' कुछ उतरा हुआ है। यह कुछ अन्तर ही भरत की परिभाषा में ''प्रमाण श्रुति'' का अन्तर है जिसे 'केशाग्र' अन्तर बताया गया है।

अब यदि किसी भी परदे पर पहले और दूसरे तार को दबा कर बजाया जाए, तो दोनों तारों की ध्वनियों में प्रमाण–श्रुति का अन्तर स्पष्ट सुनाई देगा। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि दूसरे तार पर ध्वनित होने वाले स्वर, मूल सप्तक के तार पर ध्वनित होने वाले स्वरों से ''प्रमाण श्रुति'' नीचे होंगे।

द्वितीय सारणा :–

अब तीसरे तार को इतना उतारिए कि उसके गांधार की ध्वनि, मूल सप्तक के ऋषभ की ध्वनि में मिल जाए। इतना करने पर हम देखेंगे कि तीसरे तार का निषाद मूल सप्तक के धैवत में स्वतः मिल गया। तीसरे तार पर बोलने वाला षड़ज–ग्रामिक सप्तक अब भी मूल सप्तक की अपेक्षा दो श्रुति उतरा हुआ है।

तृतीय सारणा :–

चौथे तार को अब इतना उतारिए कि इसका ऋषभ, मूल सप्तक के षड़ज में मिल जाए। ऐसा करने से चौथे तार का धैवत मूल सप्तक के पंचम में स्वतः मिल जाएगा। चौथे तार पर मिला हुआ षड़जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा तीन श्रुतियाँ उतरा हुआ है।

चतुर्थ सारणा :–

अब पाँचवें तार को इतना उतारिए कि उसका मध्यम मूल सप्तक के गान्धार में मिल जाए। यह हो जाने पर पाँचवे तार के पंचम और षड़ज क्रमशः मूल सप्तक के मध्यम और निषाद में स्वतः मिल जाएंगे। इस स्थिति में पाँचवें तार पर ध्वनित होने वाला सप्तक, मूल सप्तक की अपेक्षा चार श्रुतियाँ उतरा हुआ है।

इस प्रकार सारणा चतुष्टयी या चतु:सारणा के अनुसार हमें ऋषभ की तीन, गान्धार की दो, मध्यम की चार, पंचम की चार, धैवत की तीन, निषाद की दो और षड़ज की चार श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से मिल जाती हैं अर्थात् ऋषभ सातवीं श्रुति पर, गान्धार नवीं पर, मध्यम तेहरवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर, निषाद बाइसवीं पर और षड़ज चौथी श्रुति पर स्थित है। यही इनकी सिद्धि का प्रमाण है जिसे प्रमाण श्रुति कहा गया है।

भरत ने अपनी सारणा चतुष्टई द्वारा यह सिद्ध किया कि सभी श्रुतियाँ समान हैं। श्रुतियों की समानता सिद्ध करने के लिए भरत ने दो वीणायें लीं। इन दोनों वीणाओं को षड़ज ग्राम के स्वरों से मिलाया। तत्पश्चात् एक वीणा को अचल मानकर रख दिया और दूसरे को चल मानकर उसे मध्यम ग्राम में मिलाने के लिए उसके पंचम को एक श्रुति कम कर दिया। इस प्रकार षड़ज ग्राम के पंचम और मध्यम ग्राम में एक श्रुति का अन्तर हो गया। भरत ने इसी श्रुति को अपनी सारणा–चतुष्टयी नामक प्रयोग करने के लिए ''प्रमाण श्रुति'' माना। इसमें चल वीणा को एक–एक करके चार बार प्रमाण श्रुति उतारा जिसमें अन्तिम सारणा में चल वीणा के 'नि', 'ग' और 'म' अचल वीणा के क्रमशः 'सा', 'म' और 'प' से मिल गए। भरत ने इसी को **''प्रमाण श्रुति''** माना।

2.6.1 भरत की सारणा चतुष्टई :–

श्रुति संख्या	श्रुति नाम	स्वर	प्रथम सारणा	द्वितीय सारणा	तृतीय सारणा	चतुर्थ सारणा
22	क्षोभिणी	मन्द्र नि				सा
1	तीव्रा				स	
2	कुमुदन्ती			स		
3	मंदा		सा			रे
4	छंदोवती	षड़ज			श्रे	
5	दयावती			रे		ग
6	श्रंजनी		रे		ग	
7	रक्तिका	ऋषभ		ग		
8	रौद्री		ग			
9	क्रोधी	गान्धार				म
10	वज्रिका				म	
11	प्रसारिणी			म		
12	प्रीति		म			
13	मार्जिनी	मध्यम				प
14	क्षिति				प	
15	रक्ता			प		
16	संदीपनी		प			ध

17	**टालापिनी**	**पंचम**			**ध**	
18	**मदन्ती**			**ध**		**नि**
19	**रोहिणी**		**ध**		**नि**	
20	**रम्या**	**धैवत**		**नि**		
21	**उग्रा**		**नि**			
22	**क्षोभिणी**	**निषाद**				

2.6.2 भरत की श्रुति–स्वर स्थापना :–

संख्या	श्रुति नाम	भरत के स्वर
1	तीव्रा	––
2	कुमुदन्ती	काकली नि
3	मन्दा	––
4	छंदोवती	सा
5	दयावती	––
6	रंजनी	––
7	रक्तिका	श्रे
8	रौद्री	––
9	क्रोधी	ग
10	वज्रिका	––
11	प्रसारिणी	अन्तर ग

12	प्रीति	––
13	मार्जनी	म
14	क्षिति	––
15	रक्ता	––
16	संदीपनी	––
17	आलापिनी	प
18	मदन्ती	––
19	रोहिणी	––
20	रम्या	ध
21	उग्रा	––
22	क्षोभिणी	थ्न

प्राचीनकाल में पंडित शारंगदेव ने अपनी पुस्तक संगीत रत्नाकर में भरत के इस प्रयोग का पूर्ण समर्थन किया है। इन दोनो के प्रयोग में केवल यह अन्तर है कि भरत ने दोनों वीणाओं में सात–सात तार लगाए और शारंगदेव ने 22 तार बांधे। पं0 शारंगदेव ने वीणा पर बाईस तार चढ़ाकर जो अनुसंधान किया वह अस्पष्ट सा है। उन्होंने मंद्रतम तार को कहां मिलाया तथा उसके पश्चात् अन्य तारें कितनी–कितनी तारता पर मिलाई, यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 भरत ने प्रमाण श्रुति किसे कहा ?

प्र0.2 भरत की सारणा चतुष्टई को तालिका के माध्यम से दर्शाइए।

2.7 शारंगदेव की सारणा प्रक्रिया :–

शारंगदेव ने सारणा प्रक्रिया श्रुति वीणा पर की थी। उन्होंने इसके लिए दो श्रुति वीणा को लिया और प्रत्येक वीणा पर 22 श्रुतियों के लिए 22 तार बांधे। इन तारों को इस प्रकार रखा कि एक–दूसरे तार की बीच की अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनियां न सुनाई पड़े। दोनों श्रुति विणाओं पर बंधे हुए 22 तारों पर बाईस श्रुतियों में से चौथी, सातवीं, नवीं, तेहरवीं, सत्रहवीं, बीसवीं तथा बाइसवीं श्रुति पर क्रमशः सा रे ग म प ध नि स्वरों की स्थापना करके शारंगदेव ने दोनों वीणाओं को षड़ज ग्राम में मिलाया। एक वीणा का नाम अचल वीणा रखा। अचल वीणा को प्रमाण के लिए रख दिया और चल वीणा पर चारों सारणाओं का प्रयोग निम्न प्रकार से किया :–

प्रथम सारणा :–

इस सारणा में पंचम को जो सत्रहवीं तार पर स्थित था उसका एक प्रमाण श्रुति अपकर्ष किया। इस सारणा में चल वीणा का कोई भी स्वर अचल वीणा के किसी भी स्वर से लीन नहीं हुआ। इतना अवश्य हुआ कि इससे मध्यम ग्राम की प्राप्ति हुई।

द्वितीय सारणा :– इस सारणा में पंचम को जो कि प्रथम सारणा में सोलहवें तार पर था उसे पंद्रहवें तार पर स्थापित कर दिया गया। इसके पश्चात् अन्य स्वरों का भी अपकर्ष प्रथम सारणा की अपेक्षा एक–एक प्रमाण श्रुति किया। इस सारणा में चल वीणा का 'ग नि' स्वर, अचल वीणा के 'रे ध' स्वर में क्रमशः लीन हो गए।

तृतीय सारणा :–

इस सारणा में फिर से द्वितीय सारणा की अपेक्षा पंचम तथा अन्य स्वरों का एक–एक प्रमाण श्रुति पुनः अपकर्ष किया गया। जिसके फलस्वरूप इस सारणा में चल वीणा के 'रे ध' स्वर अचल वीणा के 'सा प' में क्रमशः लीन हो गए।

चतुर्थ सारणा :–

इस सारणा में तृतीय सारणा की अपेक्षा पंचम तथा अन्य स्वरों का एक–एक प्रमाण श्रुति पुनः अपकर्ष किया गया। फलतः इस सारणा में चल वीणा के 'सा, म, प' अचल वीणा के मन्द्र 'नि, ग, म से मिल गए।

इस प्रकार शारंगदेव ने दो श्रुति वीणाओं को षड़ज ग्राम से मिलाकर उन पर अपनी सारणाओं का प्रयोग कर षड़ज–पंचम भाव तथा षड़ज–मध्यम भाव के आधार पर 22 श्रुतियों को सिद्ध किया। इस प्रकार श्रुतियों की सिद्धि से षड़ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम की भी सिद्धि अपने आप हो गई।

पं0 शारंगदेव ने श्रुति के पश्चात् स्वर के विषय में कहा है कि श्रुति के बाद होने वाली मधुर एवं सुरीली ध्वनि जो तेल की तार की भान्ति स्थिर और गूंजदार होती है और जो स्वतः ही अर्थात् जो अपने आप ही सुनने वाले को मधुर लगती है उसको स्वर कहते हैं। शारंगदेव ने शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर 14 स्वरों का वर्णन संगीत रत्नाकर में किया है।

शारंगदेव ने स्वर–संवाद के विषय में भी संगीत रत्नाकर में कहा है कि षड़ज–पंचम भाव से 12 श्रुतियों के अन्तर पर तथा षड़ज–मध्यम भाव से 8 श्रुतियों के अन्तर पर स्वरों में संवाद होता है। दूसरी ओर भरत ने 13 और 9 श्रुतियों के अन्तर पर स्वर–संवाद माना है।

2.7.1 शारंगदेव की श्रुति–स्वर स्थापना :–

श्रुति का नाम	शारंगदेव के स्वर
1 तीव्रा –	कौशिक 'नि'
2 कुमुद्वती –	काकली 'नि'
3 मन्दा –	च्युत 'सा'
4 छंदोवती –	अच्युत 'सा'
5 दयावती	
6 रंजनी	
7 रक्तिका –	विकृत 'रे'
8 रौद्री	
9 क्रोधा –	'ग'
10 वज्रिका –	सधारण 'ग'
11 प्रसारिणी –	अन्तर 'ग'

12	प्रीति	–	च्युत 'म'
13	मार्जनी	–	अच्युत 'म'
14	क्षिति		
15	रक्ता		
16	संदीपनी	–	कौशिक 'प'
17	आलापनी	–	''प''
18	मदन्ती		
19	रोहिणी		
20	रम्या	–	विकृत 'ध'
21	उग्रा		
22	क्षोभिणी	–	''नि''

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 शारंगदेव की श्रुति–स्वर स्थापना का वर्णन कीजिए।

2.8 भातखण्डे का श्रुति–स्वर सम्बन्ध एवं स्थापना :–

आधुनिक काल जिसे 19वीं शताब्दी से माना जाता है, इस समय पं0 भातखण्डे द्वारा दो ग्रंथ ''अभिनव राग मंजरी'' ओर ''संगीत मालिका'' प्रमुख थे। पं0 भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर प्राचीन व मध्यकालीन ग्रंथकारों की तरह ''चतुश्चतुश्चतुश्चैव'' के प्रसिद्ध सिद्धांत के अनुसार की है, परन्तु उन्होंने अपने शुद्ध स्वरों को प्राचीन व मध्यकालीन ग्रंथकारों की तरह उनकी अन्तिम श्रुति पर न रख कर उनकी प्रथम श्रुति पर स्थापित किया है। कहने का अर्थ ये है कि पं0 भातखण्डे ने अपने शुद्ध स्वर को उसकी पहली

श्रुति पर रखा है। इस प्रकार पं0 भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों को 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किया है :– 'सा'– पहली श्रुति पर, 'रे' पाँचवी श्रुति पर, 'ग' आठवीं श्रुति पर, 'म' दसवीं श्रुति पर, 'प' चौदहवीं श्रुति पर, 'ध' अठाहरवीं श्रुति पर और 'नि' इक्कसवीं श्रुति पर।

पं0 भातखण्डे ने 7 शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 5 विकृत स्वर माने हैं और इस प्रकार कुल मिलाकर एक सप्तक में बारह स्वर माने हैं। यही 12 स्वर आज हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रयोग किए जाते हैं। पं0 भातखण्डे ने 12 स्वरों को 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किया है :–

2.8.1 पं0 भातखण्डे की श्रुति–स्वर स्थापना :–

श्रुति संख्या	श्रुति का नाम	भातखण्डे के स्वर
1	तीव्रा	षड़ज
2	कुमुद्वति	
3	मंद्रा	कोमल ऋषभ
4	छंदोवती	
5	दयावती	शुद्ध ऋषभ
6	रंजनी	
7	रक्तिका	कोमल गान्धार
8	रौद्री	शुद्ध गान्धार
9	क्रोधा	
10	वज्रिका	शुद्ध मध्यम
11	प्रसारिणी	
12	प्रीति	तीव्र मध्यम
13	मार्जनी	

14	क्षिति	पंचम
15	रक्ता	
16	संदीपनी	कोमल धैवत
17	आलापनी	
18	मदंती	शुद्ध धैवत
19	रोहिणी	
20	रम्या	कोमल निषाद
21	उग्रा	शुद्ध निषाद
22	क्षोभिणी	

स्वयं परीक्षण प्रश्नावनली – 6

प्र0.1 भातखण्डे जी के श्रुति–स्वर सम्बन्ध एवं स्थापना के विषय में बताइए।

2.9 प्रमाण श्रुति –

भरत के अनुसार दो श्रुतियों के बीच के अन्तर को 'प्रमाण श्रुति' कहा जाता है। उनके अनुसार षड़ज ग्राम में पंचम 17वीं श्रुति पर तथा मध्यम ग्राम में पंचम 16वीं श्रुति पर स्थापित होता है। दोनों ग्रामों के पंचम स्वर का अन्तर 17–16 = 1 श्रुति का है। इन दो श्रुतियों में जो एक श्रुति का अन्तर होता है उसे ही 'प्रमाण श्रुति' अन्तर कहा जाता है।

स्वरों को अन्तिम श्रुति पर स्थापित करने से षड़ज ग्राम प्राप्त होता है। प्रथम श्रुति पर स्थापित करने से बिलावल थाट की प्राप्ति होती है।

आधुनिक समय में आ0 बृहस्पति ने श्रूतियों के अन्तर को असमान माना है और इसे अपने द्वारा अविष्कृत किए श्रुति दर्पण वाद्य द्वारा सिद्ध किया है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 7

प्र0.1 प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं ?

2.10 आचार्य बृहस्पति का श्रुति–स्वर सम्बन्ध :–

आधुनिक काल में आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति ने भी श्रुति–स्वर सम्बन्ध की व्याख्या की है। उन्होंने श्रुतियों के अन्तर को असमान माना। उन्होंने इसे अपने द्वारा अविष्कृत श्रुति दर्पण नामक वाद्य पर सिद्ध किया। श्रुति दर्पण तम्बूरे के आकार वाली एक सपाट दण्ड युक्त वीणा है जिस पर सपाट परदे ही लगे हैं। इसमें पाँच तारें लगी होती हैं। प्रथम तंत्री के नीचे के पर्दों पर षड़ज ग्राम मिलाया जाता है। यही मूल सप्तक या ध्रुव वीणा का काम देगा। आचार्य बृहस्पति ने भी अपनी वीणा पर सारणा क्रिया करके स्वर–श्रुति सम्बन्ध को दर्शाया। जो कि इस प्रकार है :–

प्रथम सारणा :–

प्रथम सारणा में दूसरी तंत्री को पंचम में मिलाया जाता है। यह पंचम स्वर मूल सप्तक के रिषभ के साथ संवादी होना चाहिए। यह प्रमाण श्रुति का कार्य करता है। इस तंत्री के नीचे के पर्दे को दबाया जाए तो मूल सप्तक से थोड़ी नीची ध्वनि वाले स्वर सुनाई देंगे। प्रथम तथा द्वितीय तार को एक साथ किसी भी पर्दे पर दबाकर सुनने से यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

द्वितीय सारणा :–

दूसरी सारणा में तीसरी तार को इतना उतारा जाता है जिससे की वह मूल सप्तक के रिषभ के साथ एकीकार हो जाए। इस प्रकार इस नए सप्तक के निषाद (नि) का अन्तर भाव मूल सप्तक के धैवत से हो जाता है। इस प्रकार हमें दो श्रुतियों की प्राप्ति होती है जिसका प्रमाण हमें पहली तथा तीसरी तार में स्थित पर्दों को एक साथ बजाने से हो जाता है।

तृतीय सारणा :–

इस सारणा में चौथी तार को इतना उतारा जाता है कि उसके नीचे के रिषभ तथा धैवत के पर्दे मूल सप्तक के षड़ज तथा पंचम से मिल जाएं जिससे तीन श्रुतियों की प्राप्ति होती है।

चतुर्थ सारणा :–

चौथी सारणा में पांचवीं तार को इतना उतारा जाता है कि उसके मध्यम, पंचम तथा षड़ज के पर्दों का एकीकरण मूल सप्तक के गन्धार, मध्यम तथा निषाद के पर्दों की ध्वनियों के साथ हो जाए। अतः इस प्रकार हमें चार श्रुतियां मिलती हैं।

2.10.1 आचार्य बृहस्पति की प्रमाण श्रुति :–

आचार्य बृहस्पति ने प्रमाण श्रुति को 'ग' अन्तर के समान माना है। इसके साथ–साथ 'ख तथा क' अन्तर भी माने हैं। 'क' अन्तर सबसे बड़ा, 'ख' उससे छोटा तथा 'ग' अन्तर सबसे छोटा माना है। इस प्रकार उनके मतानुसार षड़ज की चार श्रुतियां 'ग, क, ख, ग', रिषभ की तीन 'क, ख, ग', गन्धार की दो 'ख, ग', मध्यम की चार 'ग, क, ख, ग', पंचम की चार ' ग, क, ख, ग', धैवत की तीन ' क, ख, ग' तथा निषाद की दो श्रुतियां 'ख, ग' प्रकार की हैं।

2.10.2 श्रुति दर्पण पर सारणा क्रिया :–

पाँचवां तार चौथी सारणा	चौथा तार तीसरी सारणा	तीसरा तार द्वितीय सारणा	दूसरा तार पहली सारणा	पहला तार मूल सप्तक
				प
				ध
				थ्न

नि	1	2	3	4 सा
	सा	5	6	7 रे
		श्रे	8	9 ग
ग	10	11	12	13 म
म	14	15	16	17 प
	प	18	19	20 ध
		ध	21	22 नि
नि	1	2	3	4 सा

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 8

प्र0.1 आचार्य बृहस्पति की प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं ?

2.11 सारांश :–

जैसा कि विद्वानों का मानना है कि नाद को श्रवणावस्था में श्रुति तथा व्यक्तावस्था में स्वर कहा जाता है। भारतीय संगीत में यह विशेषता प्राचीन काल से मानी जाती है। हमारे सप्तक में 22 नादों का प्रयोग होता आ रहा है। जब इनमें से कोई नाद प्रयोग नही होता तब वह श्रुति कहलाता है और जब नाद का स्पष्ट रूप से संगीत में प्रयोग किया जाता है तब वही नाद स्वर कहलाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वर और श्रुति में इतना समीप का सम्बन्ध है। इसी लिए हमारे संगीत विद्वानों ने अलग–अलग उपमा देकर श्रुति–स्वर के सम्बन्ध

को वर्णित किया है। जैसे– मुख और दर्पण, आकाश और पक्षी, क्षीर और दधि इत्यादि। इस सम्बन्ध और श्रुति–स्वर स्थापना को अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से वर्णित किया है।

2.12 शब्दकोष :–

1 पृथकत्व – अलग होना

2 अपकर्ष – अवनति, उतार या ह्रास

2.13 स्वयं निरीक्षण प्रश्न–उतर :–

प्र0.1 श्रुति भारतीय संगीत की जननी है, इसे संक्षेप में समझाइए।

उ0. "अभिनवराग मंजरी" में श्रुति की परिभाषा के अन्तर्गत लिखा है कि जो आवाज़ गीत में प्रयोग की जा सके और एक–दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहचानी जा सके उसे "श्रुति" कहते हैं। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि जो आवाज़ स्पष्ट, संगीतोपयोगी और एक–दूसरे से अलग पहचानी जाए वह "श्रुति" है।

श्रुति भारतीय संगीत की जननी है। श्रुति से तात्पर्य उन सूक्ष्मतर ध्वनि अन्तरों से है जिनसे एक सप्तक बनता है। इसके अतिरिक्त श्रुतियाँ ही शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान को निर्धारित करती हैं। अतः अब हम श्रुति की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– " वह आवाज़ जो कानों से सुनी, समझी जाए, जिसकी ऊँचाई, निचाई के पृथकत्व का स्पष्ट अनुभव किया जा सके, जो स्वरों की शुद्ध–अशुद्ध, विकृत–अविकृत अवस्था का कारण हो, जो संगीतोपयोगी एवं रंजक हो, जिसे कण्ठ से उच्चरित किया जा सके और वाद्य यंत्रों में बजा सके वही अनुरंजक ध्वनि श्रुति है।"

प्र0.2 अलग–अलग ग्रन्थकारों के अनुसार स्वर की परिभाषा दीजिए।

उ0. **"स्वर"** वह संगीतोपयोगी आवाज़ जो स्पष्ट और स्वयं मधुर हों, जिसे सुन कर मानव मन को प्रसन्नता की अनुभूति हो, वह स्वर कहलाती है। पं0 अहोबल के विचारानुसार जो अपने आप ही सुनने वालों के चित को आकर्षित करते हैं, वे स्वर कहलाते हैं।

''संगीत दर्पण'' के लेखक दामोदर पंडित की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति उत्पन्न करने के बाद जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित होता है उसे स्वर समझना चाहिए।

पुण्डरिक विठ्ठल के अनुसार अनुरणनहीन नाद को श्रुति कहते हैं और जब श्रुति अनुरणन हो जाती है तब वह स्वर बन जाती है।

शारंगदेव कृत ''संगीत रत्नाकर'' में दी स्वर की परिभाषा का भावार्थ यह है कि श्रुति के पश्चात् तुरन्त उत्पन्न होने वाला नाद, जो सुनने वालों के चित का स्वतः रंजन कर सकता है, वह स्वर कहलाता है।

प्र0.3 श्रुति और स्वर के आपसी सम्बन्ध को बताइए।

उ0. **श्रुति–स्वर सम्बन्ध :–**

जो सुनी जा सकती है, वह **"श्रुति"** कहलाती है। स्वर और श्रुति में परस्पर अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। स्वर और श्रुति में भेद इतना ही है, जितना सर्प और उसकी कुन्डली में अर्थात् इन 22 श्रुतियों में से जो श्रुतियाँ किसी राग विशेष में प्रयुक्त होती है, वे स्वर कहलाती हैं। जब किसी अन्य राग में इन स्वरों के अतिरिक्त अन्य श्रुतियाँ काम में ली जाती हैं, तो जो श्रुतियाँ अब काम में आईं, वे स्वर बन गई, और जो स्वर छोड़ दिए गए, वे पुनः श्रुतियाँ बन गई। उदाहरण के लिए यदि हम राग मालकौंस गाते हैं, तो जिन श्रुतियों पर यह राग गाया–बजाया जाएगा, वे स्वर कहलाएंगी, लेकिन फिर यदि हम राग हिन्डोल गाते हैं, तो जो श्रुतियाँ राग मालकौंस में प्रयुक्त होते समय स्वर बन गई थीं, अब उन्हें छोड़ना पड़ेगा। अतः वे पुनः श्रुतियाँ बन जाएंगी और जो श्रुतियाँ राग हिंडोल में प्रयुक्त होंगी वे स्वर कहलाएंगी। इस प्रकार जब गायन–वादन में श्रुति का प्रयोग नहीं होता तो वह कुण्डली की भान्ति सोई हुई रहती हैं और जब इनका प्रयोग किसी राग विशेष में होता है तो वह सर्प की भान्ति क्रियाशील हो जाती हैं। इस आधार पर श्रुति को कुण्डली और स्वर को सर्प की उपमा दी गई है। इस प्रकार श्रुति और स्वर में विशेष सम्बन्ध है। विद्वानों का कहना है कि कण, मींड, स्पर्श, सूत आदि श्रुति कहलाते हैं और उन पर ठहर जाने से वही स्वर कहलाते हैं।

श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनित अथवा गूँज का रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित हो तथा जिसे किसी अन्य नाद की आवश्यकता नही होती, उसे स्वर कहते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर (स्पर्श) मात्र से जो क्षणिक ध्वनि उत्पन्न होती है, वह श्रुति है और तुरन्त ही आवाज़ स्थिर हो गई तो वह स्वर बन जाता है।

श्रुति और स्वर देखने में दो नाम अवश्य हैं लेकिन ध्यान पूर्वक देखा जाए तो श्रुति और स्वर में कोई विशेष अन्तर नही है, क्यों कि दोनों ही संगीत उपयोगी आवाज़ें हैं। दोनों का ही प्रयोग गायन–वादन में होता है और दोनों की आवाज़े स्पष्ट सुनी जा सकती हैं। प्राचीन पंडितों ने नाद से 22 स्थान ऐसे चुने जिनकी आवाज़ परस्पर ऊँची–नीची है और जो संगीत में उपयोगी सिद्ध हुई, उन्हें श्रुति कहा।

इसके बाद उन 22 श्रुतियों में से कुछ ध्वनियाँ ऐसी चुनी जो परस्पर अन्तराल पर हैं, वह बहुत ही सूक्ष्म हैं, जिन्हें संगीतज्ञों के साथ–साथ साधारण संगीत प्रेमी भी पहचान लेते हैं, उसे स्वर कहते हैं। इस प्रकार श्रुति और स्वर में एक घनिष्ट सम्बन्ध है।

प्र0.4 प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक ग्रन्थकारों के श्रुति–स्वर स्थान को तालिका द्वारा दर्शाइए।

उ0. **प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों के श्रुति–स्वर स्थान :–**

श्रुति संख्या	श्रुति नाम	प्राचीन, मध्यकालीन स्वर स्थान	आधुनिक स्वर स्थान
1	तीव्रा		सा
2	कुमुद्वती		
3	मन्दा		
4	छन्दोवती	सा	
5	दयावती		रे
6	रंजनी		
7	रक्तिका	रे	
8	रौद्री		ग
9	क्रोधी	ग	
10	वज्रिका		म
11	प्रसारिणी		
12	प्रीति		
13	मार्जिनी	म	
14	क्षिती		प
15	रक्ता		
16	संदीपनी		
17	आलापिनी	प	
18	मदन्ती		ध
19	रोहिणी		

20 21 22	रम्या उग्रा क्षोभिणी	ध नी	 नी

उपरोक्त मानचित्र से स्पष्ट है कि प्राचीन और आधुनिक ग्रंथकारों में श्रुति अन्तर में समानता होने पर भी स्वर–स्थानों में अन्तर है। कारण ये है कि प्राचीन, मध्यकालीन ग्रंथकारों के शुद्ध स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थित हैं और आधुनिक ग्रंथकारों के शुद्ध स्वर अपनी पहली श्रुति पर स्थित हैं।

प्र0.5 प्राचीन व आधुनिक ग्रन्थकारों ने किस आधार पर 22 श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों में विभाजित किया ?

उ0. **श्रुतियों पर स्वर स्थापना :–**

हमारे प्राचीन ग्रंथकार भरत, पं0 शारंगदेव, मध्यकालीन ग्रंथकार पं0 अहोबल, श्रीनिवास, कवि लोचन और ह्रदयनारायण देव और आधुनिक ग्रंथकार एवं संगीतकार पं0 भातखण्डे और आचार्य बृहस्पति आदि ने 22 श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों में बाँटने के लिए प्रसिद्ध परम्परागत निम्न नियम माना है :–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड़जमध्यमपंचमा।

द्वेद्वे निषादगांधारो तिस्त्री रिषभधैवतो।।

भावार्थः– षड़ज, मध्यम, पंचम स्वरों की चार–चार श्रुति, रिषभ और धैवत की तीन–तीन और गांधार तथा निषाद की दो–दो श्रुतियाँ हैं।

उपरोक्त नियमानुसार सप्तक के सा, रे, ग, म, प, ध, नि स्वर क्रमशः 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 के श्रुति अन्तर पर स्थापित किए गए हैं। स्वर स्थानों के विषय में प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक ग्रंथकारों में मतभेद है। प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते हैं। जैसे सा की चार श्रुतियाँ हैं तो सा का स्थान चौथी श्रुति पर निश्चित है परन्तु आधुनिक ग्रंथकार इसके विपरीत अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अपनी पहली श्रुति पर स्थित करते हैं। जैसे कि सा की चार श्रुतियाँ हैं तो सा का स्थान पहली श्रुति पर होगा।

प्राचीन ग्रंथकारों की शुद्ध स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर इस प्रकार हुई है। षड़ज चौथी श्रुति पर, रिषभ सातवीं पर, गान्धार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थापित है।

आधुनिक ग्रंथकार अपना प्रत्येक स्वर पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं अतः उनकी स्वर स्थापना इस प्रकार होगीः– षड़ज पहली श्रुति पर, रिषभ पाँचवीं पर, गान्धार आठवीं पर, मध्यम दसवीं पर, पंचम चौदहवीं श्रुति पर, धैवत अठारवीं श्रुति पर और निषाद इक्कसवीं श्रुति पर स्थापित है।

प्र0.6 भरत ने प्रमाण श्रुति किसे कहा ?

उ0. भरत ने अपनी सारणा चतुष्टई द्वारा यह सिद्ध किया कि सभी श्रुतियाँ समान हैं। श्रुतियों की समानता सिद्ध करने के लिए भरत ने दो वीणायें लीं। इन दोनों वीणाओं को षड़ज ग्राम के स्वरों से मिलाया। तत्पश्चात् एक वीणा को अचल मानकर रख दिया और दूसरे को चल मानकर उसे मध्यम ग्राम में मिलाने के लिए उसके पंचम को एक श्रुति कम कर दिया। इस प्रकार षड़ज ग्राम के पंचम और मध्यम ग्राम में एक श्रुति का अन्तर हो गया। भरत ने इसी श्रुति को अपनी सारणा–चतुष्टयी नामक प्रयोग करने के लिए ''प्रमाण श्रुति'' माना। इसमें चल वीणा को एक–एक करके चार बार प्रमाण श्रुति उतारा जिसमें अन्तिम सारणा में चल वीणा के 'नि', 'ग' और 'म' अचल वीणा के क्रमशः 'सा', 'म' और 'प' से मिल गए। भरत ने इसी को **''प्रमाण श्रुति''** माना।

प्र0.7 शारंगदेव की श्रुति स्वर स्थापना का वर्णन कीजिए।

उ0. प्राचीनकाल में पंडित शारंगदेव ने अपनी पुस्तक संगीत रत्नाकर में भरत के इस प्रयोग का पूर्ण समर्थन किया है। इन दोनो के प्रयोग में केवल यह अन्तर है कि भरत ने दोनों वीणाओं में सात–सात तार लगाए और शारंगदेव ने 22 तार बांधे। पं0 शारंगदेव ने वीणा पर बाईस तार चढ़ाकर जो अनुसंधान किया वह अस्पष्ट सा है। उन्होंने मंद्रतम तार को कहां मिलाया तथा उसके पश्चात् अन्य तारें कितनी–कितनी तारता पर मिलाई, यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है।

शारंगदेव की सारणा प्रक्रिया :–

शारंगदेव ने सारणा प्रक्रिया श्रुति वीणा पर की थी। उन्होंने इसके लिए दो श्रुति वीणा को लिया और प्रत्येक वीणा पर 22 श्रुतियों के लिए 22 तार बांधे। इन तारों को इस प्रकार रखा कि एक–दूसरे तार की बीच की अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनियां न सुनाई पड़े। दोनों श्रुति विणाओं पर बंधे हुए 22 तारों पर बाईस श्रुतियों में से चौथी, सातवीं, नवीं, तेहरवीं, सत्रहवीं, बीसवीं तथा बाइसवीं श्रुति पर क्रमशः सा रे ग म प ध नि स्वरों की स्थापना करके

शारंगदेव ने दोनों वीणाओं को षड़ज ग्राम में मिलाया। एक वीणा का नाम अचल वीणा रखा। अचल वीणा को प्रमाण के लिए रख दिया और चल वीणा पर चारों सारणाओं का प्रयोग निम्न प्रकार से किया :–

प्रथम सारणा :–

इस सारणा में पंचम को जो सत्रहवीं तार पर स्थित था उसका एक प्रमाण श्रुति अपकर्ष किया। इस सारणा में चल वीणा का कोई भी स्वर अचल वीणा के किसी भी स्वर से लीन नहीं हुआ। इतना अवश्य हुआ कि इससे मध्यम ग्राम की प्राप्ति हुई।

द्वितीय सारणा :–

इस सारणा में पंचम को जो कि प्रथम सारणा में सोलहवें तार पर था उसे पंद्रहवें तार पर स्थापित कर दिया गया। इसके पश्चात् अन्य स्वरों का भी अपकर्ष प्रथम सारणा की अपेक्षा एक–एक प्रमाण श्रुति किया। इस सारणा में चल वीणा का 'ग नि' स्वर, अचल वीणा के 'रे ध' स्वर में क्रमशः लीन हो गए।

तृतीय सारणा :–

इस सारणा में फिर से द्वितीय सारणा की अपेक्षा पंचम तथा अन्य स्वरों का एक–एक प्रमाण श्रुति पुनः अपकर्ष किया गया। जिसके फलस्वरूप इस सारणा में चल वीणा के 'रे ध' स्वर अचल वीणा के 'सा प' में क्रमशः लीन हो गए।

चतुर्थ सारणा :–

इस सारणा में तृतीय सारणा की अपेक्षा पंचम तथा अन्य स्वरों का एक–एक प्रमाण श्रुति पुनः अपकर्ष किया गया। फलतः इस सारणा में चल वीणा के 'सा, म, प' अचल वीणा के मन्द्र 'नि, ग, म से मिल गए।

इस प्रकार शारंगदेव ने दो श्रुति वीणाओं को षड़ज ग्राम से मिलाकर उन पर अपनी सारणाओं का प्रयोग कर षड़ज–पंचम भाव तथा षड़ज–मध्यम भाव के आधार पर 22 श्रुतियों को सिद्ध किया। इस प्रकार श्रुतियों की सिद्धि से षड़ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम की भी सिद्धि अपने आप हो गई।

पं0 शारंगदेव ने श्रुति के पश्चात् स्वर के विषय में कहा है कि श्रुति के बाद होने वाली मधुर एवं सुरीली ध्वनि जो तेल की तार की भान्ति स्थिर और गूंजदार होती है और जो स्वतः ही अर्थात् जो अपने आप ही सुनने वाले को मधुर लगती है उसको स्वर कहते हैं। शारंगदेव ने शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर 14 स्वरों का वर्णन संगीत रत्नाकर में किया है।

शारंगदेव ने स्वर–संवाद के विषय में भी संगीत रत्नाकर में कहा है कि षड़ज–पंचम भाव से 12 श्रुतियों के अन्तर पर तथा षड़ज–मध्यम भाव से 8 श्रुतियों के अन्तर पर स्वरों में संवाद होता है। दूसरी ओर भरत ने 13 और 9 श्रुतियों के अन्तर पर स्वर–संवाद माना है।

प्र0.8 भरत की सारणा चतुष्टई को तालिका के माध्यम से दर्शाइए।

उ0. **भरत की सारणा चतुष्टई :–**

श्रुति संख्या	**श्रुति नाम**	**स्वर**	**प्रथम सारणा**	**द्वितीय सारणा**	**तृतीय सारणा**	**चतुर्थ सारणा**
22	क्षोभिणी	**मन्द्र नि**				**सा**
1	तीव्रा				**स**	
2	कुमुदन्ती			**स**		
3	मंदा		**सा**			**रे**
4	**छंदोवती**	**षड़ज**			**रे**	
5	**दयावती**			**रे**		**ग**
6	**श्रंजनी**		**रे**		**ग**	
7	**रक्तिका**	**ऋषभ**		**ग**		
8	**रौद्री**		**ग**			
9	**क्रोधी**	**गान्धार**				**म**
10	**वज्रिका**				**म**	
11	**प्रसारिणी**			**म**		
12	**प्रीति**		**म**			
13	**मार्जिनी**	**मध्यम**				**प**

14	**क्षिति**				**प**	
15	**रक्ता**			**प**		
16	**संदीपनी**		**प**			**ध**
17	**टालापिनी**	**पंचम**			**ध**	
18	**मदन्ती**			**ध**		**नि**
19	**रोहिणी**		**ध**		**नि**	
20	**रम्या**	**धैवत**		**नि**		
21	**डग्रा**		**नि**			
22	**क्षोभिणी**	**निषाद**				

प्र0.9 भातखण्डे की श्रुति–स्वर सम्बन्ध स्थापना के विषय में बताइए।

उ0. भातखण्डे का श्रुति–स्वर सम्बन्ध एवं स्थापना :–

आधुनिक काल जिसे 19वीं शताब्दी से माना जाता है, इस समय पं0 भातखण्डे द्वारा दो ग्रंथ ''अभिनव राग मंजरी'' ओर ''संगीत मालिका'' प्रमुख थे। पं0 भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर प्राचीन व मध्यकालीन ग्रंथकारों की तरह ''चतुश्चतुश्चतुश्चैव'' के प्रसिद्ध सिद्धांत के अनुसार की है, परन्तु उन्होंने अपने शुद्ध स्वरों को प्राचीन व मध्यकालीन ग्रंथकारों की तरह उनकी अन्तिम श्रुति पर न रख कर उनकी प्रथम श्रुति पर स्थापित किया है। कहने का अर्थ ये है कि पं0 भातखण्डे ने अपने शुद्ध स्वर को उसकी पहली श्रुति पर रखा है। इस प्रकार पं0 भातखण्डे ने सप्तक के सात शुद्ध स्वरों को 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किया है :– 'सा'– पहली श्रुति पर, 'रे' पाँचवी श्रुति पर, 'ग' आठवीं श्रुति पर, 'म' दसवीं श्रुति पर, 'प' चौदहवीं श्रुति पर, 'ध' अठाहरवीं श्रुति पर और 'नि' इक्कसवीं श्रुति पर।

पं0 भातखण्डे ने 7 शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 5 विकृत स्वर माने हैं ओर इस प्रकार कुल मिलाकर एक सप्तक में बारह स्वर माने हैं। यही 12 स्वर आज हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में प्रयोग किए जाते हैं। पं0 भातखण्डे ने 12 स्वरों को 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किया है :–

पं0 भातखण्डे की श्रुति–स्वर स्थापना :–

श्रुति संख्या	**श्रुति का नाम**	**भातखण्डे के स्वर**
1	तीव्रा	षड़ज
2	कुमुद्धति	
3	मंद्रा	कोमल ऋषभ
4	छंदोवती	
5	दयावती	शुद्ध ऋषभ
6	रंजनी	
7	रक्तिका	कोमल गान्धार
8	रौद्री	शुद्ध गान्धार
9	क्रोधा	
10	वज्रिका	शुद्ध मध्यम
11	प्रसारिणी	
12	प्रीति	तीव्र मध्यम
13	मार्जनी	
14	क्षिति	पंचम
15	रक्ता	
16	संदीपनी	कोमल धैवत

17	आलापनी	
18	मदंती	शुद्ध धैवत
19	रोहिणी	
20	रम्या	कोमल निषाद
21	उग्रा	शुद्ध निषाद
22	क्षोभिणी	

प्र0.10 प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **प्रमाण श्रुति –**

भरत के अनुसार दो श्रुतियों के बीच के अन्तर को 'प्रमाण श्रुति' कहा जाता है। उनके अनुसार षड़ज ग्राम में पंचम 17वीं श्रुति पर तथा मध्यम ग्राम में पंचम 16वीं श्रुति पर स्थापित होता है। दोनों ग्रामों के पंचम स्वर का अन्तर 17–16 = 1 श्रुति का है। इन दो श्रुतियों में जो एक श्रुति का अन्तर होता है उसे ही 'प्रमाण श्रुति' अन्तर कहा जाता है।

स्वरों को अन्तिम श्रुति पर स्थापित करने से षड़ज ग्राम प्राप्त होता है। प्रथम श्रुति पर स्थापित करने से बिलावल थाट की प्राप्ति होती है।

आधुनिक समय में आ0 बृहस्पति ने श्रूतियों के अन्तर को असमान माना है और इसे अपने द्वारा अविष्कृत किए श्रुति दर्पण वाद्य द्वारा सिद्ध किया है।

प्र0.11 आचार्य बृहस्पति की प्रमाण श्रुति से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **आचार्य बृहस्पति की प्रमाण श्रुति :–**

आचार्य बृहस्पति ने प्रमाण श्रुति को 'ग' अन्तर के समान माना है। इसके साथ–साथ 'ख तथा क' अन्तर भी माने हैं। 'क' अन्तर सबसे बड़ा, 'ख' उससे छोटा तथा 'ग' अन्तर सबसे छोटा माना है। इस प्रकार उनके मतानुसार षड़ज की चार श्रुतियां 'ग, क, ख, ग', रिषभ की तीन 'क, ख, ग', गन्धार की दो 'ख, ग', मध्यम की

चार 'ग, क, ख, ग', पंचम की चार ' ग, क, ख, ग', धैवत की तीन ' क, ख, ग' तथा निषाद की दो श्रुतियां 'ख, ग' प्रकार की हैं।

2.14 संदर्भ गन्थ सूची :–

1. संगीत निबन्ध माला, पं. जगदीश नारायण पाठक, प्रकाशक – पाठक पब्लिशर, महाजनी टोला, इलाहाबाद।

2. संगीत दर्पण, पं. जगदीश नारायण पाठक, प्रकाशक – पाठक पब्लिशर, महाजनी टोला, इलाहाबाद।

3. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

4. संगीत चिंतामणी, आचार्य बृहस्पति, श्री मति सुमित्रा कुमारी, श्री मति सुलोचना बृहस्पति, बृहस्पति पब्लीकेशन, नई दिल्ली 1987।

2.15 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 भातखण्डे की स्वर–श्रुति व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 श्रुति और स्वर से आप क्या समझते हैं ? दोनों के परस्पर सम्बन्ध के विषय में बताइए।

प्र0.3 भरत की श्रुति स्वर स्थापना का वर्णन कीजिए।

UNIT – II

LESSON - 3

Knowledge of Gram and establishment of Shadej and Madhym Gram on Veena

ग्राम क्या है और षड़ज तथा मध्यम ग्राम की वीणा पर स्थापना

STRUCTURE :

3.1 भूमिका

3.2 उदेश्य

3.3 ग्राम की परिभाषा

3.3.1 भरत के अनुसार ग्राम की परिभाषा

3.4 तीनों ग्रामों का स्वर सहित वर्णन

3.5 षड़ज और मध्यम ग्रामों की मूर्च्छनाएं

3.5.1 षड़ज ग्राम की मूर्छनाएं

3.5.2 मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएं

3.6 वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना

3.7 सारांश

3.8 शब्दकोष

3.9 स्वयं निरीक्षण प्रश्न–उत्तर

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

3.1 भूमिका :–

यूं तो संगीत के विकास और प्रचार का वर्णन विभिन्न वेदों एवं प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। परन्तु प्राचीन काल का क्या संगीत था ये वेदों से पूर्णतया ज्ञात नहीं होता। सर्वप्रथम प्राचीनकाल के संगीत के विषय में जानकारी हमें भरत के नाटयशास्त्र से मिलती है। प्राचीन काल में जाति गायन होता था। ये समस्त जाति गायन ग्राम तथा मूर्छनाओं के आधार पर होता था। सर्वप्रथम ग्राम तथा मूर्छनाओं की जानकारी भी हमें भरत के नाटयशास्त्र से ही प्राप्त होती है।

3.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य ग्राम के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है। सर्वप्रथम किस प्रकार भरत ने षड़ज और मध्यम ग्राम को वीणा पर स्थापित किया था यह भी हमें इस पाठ के द्वारा ज्ञात होगा।

3.3 ग्राम की परिभाषा :–

'ग्राम' एक समूहवाची शब्द है, जिस प्रकार कुटुम्ब में लोग मिलजुल कर रहते हैं, उसी प्रकार वादी–सम्वादी स्वरों का वह समूह जिसमें श्रुतियां व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्छनाओं, तानों आदि का आश्रय हो उसे ''ग्राम'' कहा जाता है।

3.3.1 भरत के अनुसार ग्राम की परिभाषा —

"स्वराणाम समूहो ग्राम इत्यूच्यते"। अर्थात् स्वरों का समूह ही 'ग्राम' है।

भरत ने तीन प्रकार के ग्रामों का उल्लेख किया तथा उनकी सात–सात मूर्छनाएं भी बताई। ये तीन ग्राम हैं —

1 षड़ज ग्राम   2 मध्यम ग्राम   3 गन्धार ग्राम

कहा जाता है कि गन्धार ग्राम निषाद स्वर से प्रारम्भ होता था। इस ग्राम का प्रयोग गन्धर्व लोगों द्वारा स्वर्गलोक में किया जाता था। ये ग्राम इतनें ऊँचे स्वर से प्रारम्भ होता था कि इसका प्रयोग करना सभी के लिए सम्भव नहीं था। यही कारण है कि यह ग्राम प्रायः पहले ही लुप्त हो गया।

आगे चल कर समस्त जाति गायन केवल दो ग्रामों षड़ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम और उनकी सात–सात मूर्छनाओं अर्थात् कुल 14 मूर्छनाओं पर होने लगा। षड़ज ग्राम षड़ज स्वर से और मध्यम ग्राम मध्यम स्वर से प्रारम्भ होता था। प्रत्येक ग्राम की सात–सात मूर्छनाएं थीं जो कि क्रमशः सात शुद्ध स्वरों से प्रारम्भ होती थीं।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि प्राचीन काल का शुद्ध स्वर सप्तक आधुनिक काल के 'ग, नि' कोमल अर्थात् काफी थाट के सदृश्य था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 भरत ने ग्राम की क्या परिभाषा दी है ?

3.4 तीनों ग्रामों का वर्णन स्वरों सहित इस प्रकार है——

षड़ज ग्राम –– सा रे ग म प ध नि सां।

मध्यम ग्राम –– सा रे ग म प ध नि सां।

गन्धार ग्राम –– सा रे ग म प ध नि सां।

दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं ——

षड़ज ग्राम :– सा रे ग म प ध नि सां।

मध्यम ग्राम :– म प ध नि सां रें गं मं।

गन्धार ग्राम :– नि सां रें गं मं पं धं निं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 तीनों ग्रामों को स्वरों सहित दर्शाइए।

3.5 षड़ज और मध्यम ग्रामों की मूर्छनाएं :–

3.5.1 षड़ज ग्राम की मूर्छनाएं :–

ऱे ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग म प ध नि सां

सा रे ग म प ध नि सां ––– 1

सा रे ग म प ध नि सां ––– 2

सा रे ग म प ध नि सां ––– 3

सा रे ग म प ध नि सां ––– 4

सा रे ग म प ध नि सां ––– 5

सा रे ग म प ध नि सां ––– 6

सा रे ग म प ध नि सां –––7

3.5.2 मध्यम ग्राम की मूर्छनाएं :–

प़ ध़ नि़ सा रे ग म प ध नि सां रें गं मं

सा रे ग म प ध नि सां ––– 1

सा रे ग म प ध नि सां ––– 2

सा रे ग म प ध नि सां ––– 3

सा रे ग म प ध नि सां ––– 4

सा रे ग म प ध नि सां ––– 5

सा रे ग म प ध नि सां ––– 6

सा रे ग म प ध नि सां ––– 7

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 मध्यम ग्राम की मूर्छनाएं कैसे बनती हैं ?

3.6 वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना :–

च्तुश्चतुश्चतुश्चैव षड़ज मध्यम पंचमा,

द्वि द्वि निषाद गान्धारो तिस्त्री रिषभ धैवतो।

भरत मुनि ने उपरोक्त श्लोक के आधार पर 22 श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरो में विभाजित किया अर्थात् 'सा म प' की चार–चार श्रुतियां, निषाद–गन्धार की दो–दो श्रुतियां तथा रिषभ–धैवत की तीन–तीन श्रुतियां।

इसी आधार पर भरत ने वीणा पर एक प्रयोग किया जिससे कि उन्होंने वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना कर के दिखाई। इस प्रयोग को भरत ने ''सारणा चतुष्टई'' का नाम दिया।

उन्होंने इस प्रयोग के लिए समान आकार व समान तारों वाली दो विणाएं बनाई अथवा ली। इनमें से एक को 'चल वीणा' तथा दूसरी को 'अचल वीणा' का नाम दिया। ये दोनों विणाएं षड़ज ग्राम में उपरोक्त श्लोक के आधार पर मिलाई गई।

इन वीणाओं पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना 'सारणा चतुष्टई' में इस प्रकार की गई –––

प्रथम सारण :– प्रथम सारणा में उन्होंने जो वीणाओं में श्रुति स्वर विभाजन किया था उसे ठीक उसी प्रकार रहने दिया और उस वीणा को अचल वीणा का नाम दे दिया। इस वीणा पर षड़ज ग्राम की स्थापना बताई गई।

द्वितीय सारणा :– द्वितीय सारणा में भरत मुनि ने पंचम स्वर को एक श्रुति कम करके 16वीं श्रुति पर कर दिया। जिससे कि मध्यम ग्राम की रचना वीणा पर हो गई।

तृतीय सारणा :– तृतीय सारणा में भरत ने फिर अन्य स्वरों को भी एक–एक श्रुति नीचे उतार दिया और देखा कि फिर से षड़ज ग्राम की स्थापना वीणा पर हो गई।

चतूर्थ सारणा :– चौथी सारणा में भरत ने पुनः पंचम स्वर को एक श्रुति और नीचे उतार दिया अर्थात् अब पंचम स्वर 16वीं श्रुति से 15वीं श्रुति पर कर दिया गया तो ऐसा करने से फिर से मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर हो गई ।

इस प्रकार चार बार इस क्रिया को करने से भरत ने षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर कर के दिखाई।

श्रुति संख्या	प्रथम सारणा	द्वितीय सारणा	तृतीय सारणा	चतुर्थ सारणा
1				सा
2			सा	
3		सा		
4	सा			रे
5			रे	
6		रे		ग
7	रे		ग	
8		ग		
9	ग			
10				म
11			म	

12		म		
13	म			
14				प
15			प	
16		प		
17	प			ध
18			ध	
19		ध		नि
20	ध		नि	
21		नि		
22	नि			

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 भरत ने षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर किस आधार पर की ?

प्र0.2 भरत द्वारा वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना को सारणा क्रिया द्वारा बताइए।

3.7 सारांश :–

ग्रन्थकारों ने ग्राम की परिभाषा अपने–अपने शब्दों में की है। भरत जैसे विद्वानों का मानना है कि स्वरों का समूह ही ग्राम है। विद्वानों का मत है कि एक विशेष प्रकार की स्वर–श्रुति व्यवस्था में जितने स्वर, समूह में आते हैं उस समूह को ग्राम कहा जाता है। ग्रामों की संख्या तीन बताई गई है। जिनका वर्णन हमें सबसे पहले भरत के नाटय शास्त्र में मिलता है। भरत ने ही सर्वप्रथम षडज और मध्यम ग्राम की व्याख्या नाटय शास्त्र के माध्यम से की है। उनका मानना है कि गान्धार ग्राम पहले ही लुप्त हो चुका था। भरत ने ही सर्वप्रथम षड़ज और

मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर की थी जिसे सारणा प्रक्रिया के द्वारा 'सारणा चतुष्टई' के नाम से नाटय शास्त्र में वर्णित किया है।

3.8 शब्दकोष :–

1 कुटुम्ब –परिवार

2. लुप्त – समाप्त अथवा गुम हो जाना

3.9 स्वयं निरीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 भरत ने ग्राम की क्या परिभाषा दी है ?

उ0. **भरत के अनुसार ग्राम की परिभाषा ––**

"स्वराणाम समूहो ग्राम इत्यूच्यते"।

अर्थात् स्वरों का समूह ही 'ग्राम' है।

भरत ने तीन प्रकार के ग्रामों का उल्लेख किया तथा उनकी सात–सात मूर्छनाएं भी बताई। ये तीन ग्राम हैं ––

1 षड़ज ग्राम

2 मध्यम ग्राम

3 गन्धार ग्राम

कहा जाता है कि गन्धार ग्राम निषाद स्वर से प्रारम्भ होता था। इस ग्राम का प्रयोग गन्धर्व लोगों द्वारा स्वर्गलोक में किया जाता था। ये ग्राम इतनें ऊँचे स्वर से प्रारम्भ होता था कि इसका प्रयोग करना सभी के लिए सम्भव नहीं था। यही कारण है कि यह ग्राम प्रायः पहले ही लुप्त हो गया।

प्र0.2 तीनों ग्रामों को स्वरों सहित दर्शाइए।

समस्त जाति गायन केवल दो ग्रामों षड़ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम और उनकी सात–सात मूर्छनाओं अर्थात् कुल 14 मूर्छनाओं पर होने लगा। षड़ज ग्राम षड़ज स्वर से और मध्यम ग्राम मध्यम स्वर से प्रारम्भ होता था। प्रत्येक ग्राम की सात–सात मूर्छनाएं थीं जो कि क्रमशः सात शुद्ध स्वरों से प्रारम्भ होती थीं।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि प्राचीन काल का शुद्ध स्वर सप्तक आधुनिक काल के 'ग, नि' कोमल अर्थात् काफी थाट के सदृश्य था।

तीनों ग्रामों का वर्णन स्वरों सहित इस प्रकार है——

षड़ज ग्राम –– सा रे ग म प ध नि सां।

मध्यम ग्राम –– सा रे ग म प ध नि सां।

गन्धार ग्राम –– सा रे ग म प ध नि सां।

दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं ——

षड़ज ग्राम :– सा रे ग म प ध नि सां।

मध्यम ग्राम :– म प ध नि सां रें गं मं।

गन्धार ग्राम :– नि सां रें गं मं पं धं निं।

प्र0.3 मध्यम ग्राम की मूर्छनाएं कैसे बनती हैं ?

उ0. **मध्यम ग्राम की मूर्छनाएं :–**

प़ ध़ नि़ सा रे ग म प ध नि सां रें गं मं

सा रे ग म प ध नि सां ––– 1

सा रे ग म प ध नि सां ––– 2

सा रे ग म प ध नि सां ––– 3

सा रे ग म प ध नि सां ––– 4

सा रे ग म प ध नि सां ––– 5

सा रे ग म प ध नि सां ––– 6

सा रे ग म प ध नि सां ––– 7

प्र0.4 भरत ने षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर किस आधार पर की ?

उ0. **वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना :–**

चतुष्चतुष्चतुष्चैव षड़ज मध्यम पंचमा,

द्वि द्वि निषाद गान्धारो तिस्त्री रिषभ धैवतो।

भरत मुनि ने उपरोक्त श्लोक के आधार पर 22 श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरो में विभाजित किया अर्थात् 'सा म प' की चार–चार श्रुतियां, निषाद–गन्धार की दो–दो श्रुतियां तथा रिषभ–धैवत की तीन–तीन श्रुतियां।

इसी आधार पर भरत ने वीणा पर एक प्रयोग किया जिससे कि उन्होंने वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना कर के दिखाई। इस प्रयोग को भरत ने ''सारणा चतुष्टई'' का नाम दिया।

उन्होंने इस प्रयोग के लिए समान आकार व समान तारों वाली दो विणाएं बनाई अथवा ली। इनमें से एक को 'चल वीणा' तथा दूसरी को 'अचल वीणा' का नाम दिया। ये दोनों विणाएं षड़ज ग्राम में उपरोक्त श्लोक के आधार पर मिलाई गई।

प्र0.5 भरत द्वारा वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना को सारणा क्रिया द्वारा बताइए।

वीणाओं पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना 'सारणा चतुष्टई' में इस प्रकार की गई –––

प्रथम सारणा में उन्होंने जो विणाओं में श्रुति स्वर विभाजन किया था उसे ठीक उसी प्रकार रहने दिया और उस वीणा को अचल वीणा का नाम दे दिया। इस वीणा पर षड़ज ग्राम की स्थापना बताई गई।

द्वितीय सारणा में भरत मुनि ने पंचम स्वर को एक श्रुति कम करके 16वीं श्रुति पर कर दिया। जिससे कि मध्यम ग्राम की रचना वीणा पर हो गई।

तृतीय सारणा में भरत ने फिर अन्य स्वरों को भी एक–एक श्रुति नीचे उतार दिया और देखा कि फिर से षड़ज ग्राम की स्थापना वीणा पर हो गई।

चौथी सारणा में भरत ने पुनः पंचम स्वर को एक श्रुति और नीचे उतार दिया अर्थात् अब पंचम स्वर 16वीं श्रुति से 15वीं श्रुति पर कर दिया गया तो ऐसा करने से फिर से मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर हो गई ।इस प्रकार चार बार इस क्रिया को करने से भरत ने षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना वीणा पर कर के दिखाई।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत शिक्षा, श्रीमति विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर, जालन्धर।
2. **संगीत निबन्धावली, संकलन–डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, 1998, प्रकाशक–संगीत कार्यालय, हाथरस, इलाहाबाद।**
3. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

3.11 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 ग्राम से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या कीजिए।

प्र0.2 वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना किस प्रकार की गई ? वर्णन करें।

LESSON - 4

Moorchana, Mela and That Padhati in Hindustani Music

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में मूर्छना, मेल तथा थाट पद्धति

STRUCTURE :

4.1 भूमिका

4.2 उदेश्य

4.3 मूर्च्छना की परिभाषा

4.3.1 शारंगदेव के अनुसार मूर्च्छना परिभाषा

4.3.2 अहोबल के अनुसार मूर्च्छना परिभाषा

4.3.3 मूर्च्छना करते समय विशेष बातों का ध्यान

4.4 मूर्च्छना के प्रकार

4.4.1 संपूर्णा

4.4.2 षाड़विता

4.4.3 औडविता

4.4.4 साधारणी कृता

4.4.5 मूर्च्छना की संख्या

4.5 षड़ज ग्राम की मूर्च्छनाएं

4.5.1 उत्तर मंद्रा

4.5.2 रंजनी

4.5.3 उतरायता

4.5.4 शुद्ध षड़जा

4.5.5 मत्सरीकृता

4.5.6 अश्वक्रान्ता

4.5.7 अभिरूदगता

4.6 मध्यम ग्राम की मूर्च्छना

4.6.1 सौवेरी

4.6.2 हरिणाश्वा

4.6.3 कलोपनता

4.6.4 शुद्ध मध्या

4.6.5 मार्गी

4.6.6 पौरवी

4.6.7 ह्रश्यका

4.7 मूर्च्छना प्रकार /भेद

4.7.1 मूर्च्छना का पहला प्रकार

4.7.2 मूर्च्छना का दूसरा प्रकार

4.7.3 मूर्च्छना का तीसरा प्रकार

4.7.4 मूर्च्छना का चौथा प्रकार

4.7.5 मूर्च्छना का पांचवां प्रकार

4.7.6 मूर्च्छना का छठा प्रकार

4.7.7 मूर्च्छना का सातवां प्रकार

4.8 तीनों कालों में मूर्च्छना विशेषता

4.8.1 प्राचीनकाल

4.8.2 मध्यकाल

4.8.3 आधुनिक काल

4.9 मेल पद्धति

4.10 थाट राग पद्धति

4.10.1 दस थाट के नाम

4.11 सारांश

4.12 शब्दकोष

4.13 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

4.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.15 महत्वपूर्ण प्रश्न

4.1 भूमिका :–

क्रम युक्त सात स्वर मूर्च्छना कहलाते हैं। जब सप्तक के एक–एक स्वर का क्रम से आरोह–अवरोह किया जाता है तब वह मूर्च्छना कहलाती है। प्राचीन काल में हमारा संगीत मूर्च्छना पद्धति पर आधारित था। समय

परिवर्तन के साथ–साथ मूर्च्छना पद्धति समाप्त होती गई और इसके स्थान पर मेल पद्धति का आगमन हुआ। दक्षिण के विद्वान पं0 विद्यारण्य मेल पद्धति के जन्मदाता माने जाते हैं। सर्वप्रथम व्यंकटमुखी ने गणितानुसार द्वारा 72 मेल बनाए। संगीत के कई विद्वानों ने मेल पद्धति का अनुसरण किया और मेल की संख्या अलग–अलग बनाई। मध्यकाल में मेल पद्धति प्रचार में रही। आधुनिक काल आते–आते मेल पद्धति लुप्त हो गई और आगे चलकर थाट राग पद्धति ने इसका स्थान ले लिया।

4.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य मूर्च्छना, मेल और थाट पद्धति के विषय में विस्तार से समझना है। इन पद्धतियों का किस प्रकार विकास एवं प्रचलन शुरू हुआ यह भी इस पाठ के अध्ययन से ज्ञात होगा।

4-3 **मूर्छना की परिभाषा** :–

प्राचीनकाल में ग्राम के किसी भी स्वर को षड़ज मान कर क्रम से आरोह–अवरोह करने को 'मूर्च्छना' कहते थे। प्राचीन मूर्छना आधुनिक थाट के समान केवल एक स्वर समूह था। अन्तर केवल इतना है कि मूर्छना में आरोह–अवरोह होता था और वे गाईं भी जाती थीं जबकि थाट में केवल आरोह होता है और वे गाए नहीं जाते।

संगीत के क्षेत्र में मूर्छना का सामान्य अर्थ है सात स्वरों का क्रम से आरोह–अवरोह करना। जब क्रम से सातों स्वरों का आरोह–अवरोह होगा तब वह स्वर रचना 'मूर्छना' कहलाती है। जैसे ––

सा रे ग म प ध नि

नि ध प म ग रे सा

यदि इस प्रकार 'सा' से क्रमयुक्त सात स्वरों का आरोह–अवरोह करें तो यह षड़ज ग्राम की मूर्छना कहलाएगी। इसी प्रकार यदि ' म प ध नि सां रें गं ' करेंगे तो यह मध्यम ग्राम की मूर्छना कहलाएगी।

जिस प्रकार आज रागों की उत्पत्ति थाटों से मानी जाती है उसी प्रकार प्राचीनकाल में भिन्न–भिन्न मूर्छनाएं होती थीं जिनके आधार पर राग गाए–बजाए जाते थे। प्राचीन ग्रन्थकार अपने किसी राग का वर्णन करते समय यह नही बताते थे कि इसमें अमुक स्वर कोमल या तीव्र हैं, अपितु वे यह कहते थे कि इसमें अमुक ग्राम की अमुक मूर्छना है।

जैसे उदाहरण के लिए षड़ज ग्राम की एक मूर्छना है 'उत्तर मंद्रा', यदि हम आज के आधार पर इस मूर्छना से उत्पन्न राग का उदाहरण लें तो वह राग 'जय–जयवन्ती' बनेगा अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि इस राग में षड़ज ग्राम की उत्तर मन्द्रा मूर्छना का प्रयोग हुआ है।

इसके अतिरिक्त यह भी नहीं बताना पड़ता था कि अमुक राग में कौन से स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

अलग–अलग विद्वानों द्वारा मूर्छना की परिभाषा इस प्रकार की गई है –––

4.3.1 शारंगदेव के अनुसार ––

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोह क्ष्चावरोहणम्।

मूर्च्छनेत्युच्यते, ग्रामद्वये ताः सप्त–सप्त च।।

अर्थात् क्रम से सात स्वरों का आरोह–अवरोह मूर्छना है और वह दो ग्रामों में सात–सात हैं।

4.3.2 अहोबल के अनुसार ––

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा।

तां मूर्छना तदा लोके आहुग्रामाश्रयं बुधाः।।

अर्थात् जब ग्राम के आश्रित स्वरों का आरोह–अवरोह किया जाता है तब वह मूर्छना कहलाती है।

भरत के अनुसार क्रम से सात स्वरों का आरोह तथा अवरोह करने से मूर्छना बनती हैं । लेकिन प्रश्न यह उठता है कि किन सात स्वरों का आरोहावरोह किया जाए ? जवाब, यह है कि ग्राम के ही स्वरों का आरोह तथा अवरोह करने से मूर्छनाओं की रचना होती है । ग्राम चाहे षडज ग्राम हो अथवा मध्यम ग्राम , दोनों से समान रूप से मूर्छनाओं का मेल कहा गया है , ' ग्राम स्वर–समूहः स्यातमूर्च्छनादेः समाश्रयः ' अर्थात् ग्राम के ही स्वरों पर मूर्छना आधारित है । ग्राम के किसी भी स्वर को स्वरित (आधार) मान कर उसके ही स्वरों पर आरोह – अवरोह करने से मूर्छना की रचना होती है । उदाहरणार्थ षडज ग्राम के रिषभ(रे) को आधार मान कर मूर्छना प्रारम्भ करने से गन्धार(ग), रिषभ(रे) हो जायेगा , मध्यम, गंधार होगा , इत्यादि–इत्यादि । इसी प्रकार ग्राम के शेष स्वरों से ही आरोह–अवरोह करने से मूर्छना की रचना होती है ।

4.3.3 मूर्च्छना करते समय विशेष बातों का ध्यान रखना।

मूर्छना करते समय निम्न बातों का विशेष महत्व है :–

1 सबसे पहले एक निश्चित श्रुति व्यवस्था करने वाले स्वर समूह की व्यवस्था करना।

2 इस नियत स्वर समूह में स्वर को क्रमशः आरम्भ मान कर आरोह–अवरोह करना होगा।

3 जब किसी स्वर को आरम्भ स्वर माना हो तो उसे ही षड़ज मान कर स्वरों की व्यवस्था करना।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –1

प्र0.1 मूर्छना की परिभाषा क्या है ?
प्र0.2 मूर्छना की परिभाषा करते समय किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ?

4.4 मूर्च्छना के प्रकार :–

मूर्छना चार प्रकार की कही गई है :–

1 संपूर्णा — सात स्वरों से गाई जाने वाली 'संपूर्णा'।

2 षाड़विता — छः स्वरों से गाई जाने वाली 'षाड़विता'।

3 औडविता — पाँच स्वरों से गाई जाने वाली 'औडविता'।

4 साधारणी कृता –– अन्तर गान्धार और काकली स्वरों से गाई जाने वाली 'साधारणी कृता'।

4.4.1 मूर्छना की संख्या

एक ग्राम में 7 स्वर होते हैं। अतः प्रत्येक ग्राम से 7 मूर्छनाओं की रचना सम्भव है। अतः षडज, गन्धार और मध्यम ग्रामों से कुल 7 × 3 = 21 मूर्छनायें बन जाती हैं। मूर्छना की कुल संख्या 21 है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 मूर्छना कितने प्रकार की बताई गई हैं ?

प्र0.2 मूर्छना की कुल कितनी संख्याएं बताई गई हैं ?

4.5 षड़ज ग्राम की मूर्छनाएं :–

4.5.1 उत्तरमंद्रा – सा रे ग म प ध नि सां। या सा रे ग म प ध नि ध प म ग रे सा।

4.5.2 रंजनी – ऩि सा रे ग म प ध नि। या ऩि सा रे ग म प ध प म ग रे सा ऩि।

4.5.3 उतरायता – ध़ ऩि सा रे ग म प ध। या ध़ ऩि सा रे ग म प म ग रे सा ऩि ध़।

4.5.4 शुद्ध षड़जा–प़ ध़ ऩि सा रे ग म प। या प़ ध़ ऩि सा रे ग म ग रे सा ऩि ध़ प़।

4.5.5 मत्सरीकृता –म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग म। या म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग रे सा ऩि ध़ प़ म़।

4.5.6 अश्वक्रान्ता–ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग। या ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा रे सा ऩि ध़ प़ म़ ग़।

4.5.7 अभिरूदगता–ऱे ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा रे। या ऱे ग़ म़ प़ ध़ ऩि सा ऩि ध़ प़ म़ ग़ ऱे।

एक अन्य प्रकार से भी इसे समझा जा सकता है —

1 उत्तरमंद्रा – सा रे ग म प ध नि सां।

2 अभिरूदगता – रे ग म प ध नि सां रें।

3 अश्वक्रान्ता – ग म प ध नि सां रें गं।

4 मत्सरीकृता – म प ध नि सां रें गं मं।

5 शुद्ध षड़जा – प ध नि सां रें गं मं पं।

6 उतरायता – ध नि सां रें गं मं पं धं।

7 रंजनी – नि सां रें गं मं पं धं निं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 षड़ज ग्राम की मूर्छनाओं को स्वरों सहित बताइए।

4.6 मध्यम ग्राम की मूर्छना

4.6.1 सौवेरी – म प ध नि सां रें गं मं। या म प ध नि सां रें गं रें सां नि ध प म।

4.6.2 हरिणाश्वा – ग म प ध नि सां रें गं। या ग म प ध नि सां रें सां नि ध प म ग।

4.6.3 कलोपनता – रे ग म प ध नि सां रें ।या रे ग म प ध नि सां नि ध प म ग रे।

4.6.4 शुद्ध मध्या – सा रे ग म प ध नि सां। या सा रे ग म प ध नि ध प म ग रे सा।

4.6.5 मार्गी – ऩि सा रे ग म प ध नि। या नि सा रे ग म प ध प म ग रे सा ऩि।

4.6.6 पौरवी – ध़ ऩि सा रे ग म प ध। या ध़ ऩि सा रे ग म प म ग रे सा ऩि ध़।

4.6.7 हृष्यका – प़ ध़ ऩि सा रे ग म प। या प़ ध़ ऩि सा रे ग म ग रे सा ऩि ध़ प़।

एक अन्य प्रकार से भी इसे समझा जा सकता है —

1 सौवेरी – म प ध नि सां रें गं मं।

2 हृष्यका – प ध नि सां रें गं मं पं।

3 पौरवी – ध नि सां रें गं मं पं धं।

4 मार्गी – नि सां रें गं मं पं धं निं।

5 शुद्ध मध्या – सां रें गं मं पं धं निं सां।

6 कलोपनता – रें गं मं पं धं निं सां रें ।

7 हरिणाश्वा – गं मं पं धं निं सां रें गं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 मध्यम ग्राम की मूर्छना के स्वरों को दूसरे प्रकार से लिखिए।

4.7 मूर्च्छना के प्रकार / भेद

4.7.1 मूर्छना का पहला प्रकार / भेद – षड़ज (सा)

मूर्छना का पहला प्रकार / भेद – "षड़ज (सा)(1) पहली मूर्छना षड़ज से प्रारम्भ होगी। अतः 4थी पर सा , 7 वीं पर रे , 9 वीं पर ग , 13 वीं पर म , 17 वीं पर प , 20 वीं पर ध और 22 वीं श्रुति पर नि आएगा।

इसमें गंधार और निषाद पिछले स्वर रिषभ और धैवत से क्रमशः दो–दो श्रुति ऊँचे हैं । अतः ये दोनों स्वर कोमल हो जाएंगे और यह मूर्छना आधुनिक काफी थाट के समान होगी । यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि दो श्रुतियों से अर्ध स्वर (सेमी टोन) और 3 अथवा 4 श्रुतियों से पूर्ण स्वर (होल टोन) होता है ।

समानता :– काफी थाट के समान

4.7.2 दूसरा प्रकार – मन्द्र निषाद (ऩि)

द्वितीय मूर्छना में मन्द्र नि को सा मानकर षडज ग्राम के स्वरों पर क्रमिक आरोह–अवरोह करेंगे । इसलिये सातों स्वर क्रमशः 2 , 4 , 3 , 2 , 4 , 4 और 3 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे । यह आधुनिक बिलावल थाट के समान होगी , क्योंकि इसका कोई भी स्वर कोमल नहीं है । केवल मध्यम की 2 श्रुतियाँ हैं , अतः नियमानुसार म को कोमल होना चाहिये , किन्तु मध्यम कोमल नहीं होता । वास्तव में कोमल म को ही शुद्ध म कहते हैं ।

समानता :– आधुनिक बिलावल थाट के समान

4.7.3 तीसरा प्रकार–मन्द्र धैवत (ध़)

तीसरी मूर्छना में मन्द्र धैवत को सा मानकर आरोह अवरोह करेंगे। अतः सातों स्वर क्रमशः 3 , 2 , 4 , 3 , 2 , 4 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। इसमें रे कोमल और पंचम स्वर तीव्र मध्यम हो जायेगा , क्योंकि रे और प अपने अपने निकटवर्ती स्वरों से क्रमशः दो श्रुति ऊँचे हैं । रे कोमल होने से 4 श्रुतियों का गन्धार भी शुद्ध न होकर कोमल हो जायेगा , इसी प्रकार ध और नि भी शुद्ध न होकर कोमल हो जाएंगे । तीव्र म से 4 श्रुति ऊँचा स्वर कोमल ध और कोमल ध से 4 श्रुति ऊँचा स्वर कोमल नि हो जाएगा । अतः इस मूर्छना में रे , ग , ध और नि स्वर कोमल तथा दोनों मध्यम और पंचम वर्ण्य होने से यह मूर्छना उत्तर भारतीय किसी भी थाट के समान नहीं होगी ।

समानता :– किसी भी थाट के समान नहीं

4.7.4 चौथा प्रकार – पंचम (प़)

चौथी मूर्छना मन्द्र के पंचम से प्रारम्भ होगी । अतः इसके सातों स्वर 4 , 3 , 2 , 4 , 3 , 2 और 4 श्रुत्यांतरों पर होंगे । इसके गंधार , धैवत और निषाद स्वर कोमल हो जावेंगे । इसलिये यह मूर्छना आसावरी थाट के समान होगी ।

समानता :– आसावरी थाट के समान

4.7.5 पांचवा प्रकार – मध्यम (म़)

पाँचवी मूर्छना मन्द्र के मध्यम से प्रारम्भ होने से सातों स्वर क्रमशः 4 , 4 , 3 , 2 , 4 , 3 और 2 श्रुत्यांतरों पर होंगे । इसमें केवल निषाद स्वर कोमल होगा क्योंकि पीछे हम बता चुके हैं कि दो श्रुतियों के अन्तर से अर्धस्वर होता है । म और नि की 2–2 श्रुतियाँ हैं । म कोमल नहीं होता , अतः केवल निषाद स्वर कोमल हो जाएगा । यह मूर्छना खमाज थाट के समान होगी ।

समानता :– खमाज थाट के समान

4.7.6 छठा प्रकार – मन्द्र गंधार (ग़)

छठी मूर्छना मन्द्र ग से प्रारम्भ होगी । उसके स्वर 2 , 4 , 4 , 3 , 2 , 4 , 3 श्रुत्यांतरों पर होंगे जो कल्याण थाट के समान होगी ।

समानता :– कल्याण थाट के समान

4.7.7 सांतवा प्रकार – रिषभ (ऱे)

सातवीं मूर्छना मन्द्र के रिषभ से प्रारम्भ होगी और उसके स्वर क्रमशः 3 , 2 , 4 , 4 , 3 , 2 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे । इसमें रे , ग , ध और नि स्वर कोमल होंगे । यद्यपि ग भी 4 श्रुति ऊँचा है किन्तु कोमल रे से । इसलिये ग भी कोमल हो जायेगा । इसी प्रकार ध की 2 श्रुति होने पर यह भी कोमल हो जायेगा और धैवत के कोमल हो जाने से नि भी कोमल हो जावेगा । यह मूर्छना भैरवी थाट के समान होगी । ग्राम–तालिका से यह भी स्पष्ट हो जाएगा ।

समानता :– भैरवी थाट के समान

इसी प्रकार मध्यम ग्राम की मूर्छनायें भी ज्ञात की जा सकती हैं । यहाँ पर केवल षडज ग्राम की मूर्छनाओं पर विचार किया गया।

(जिनकी दो श्रुतियां मानी गई हैं उन्हें कोमल स्वर माना गया था।)

मूर्छनाओं का मूल रूप तभी प्राप्त होता है जब उसे आरोह–अवरोह दोनों क्रमों से कहा जाए। जैसे –––

सा रे ग म प ध नि सां ––– सां नि ध प म ग रे सा।

ये दो अलंकार दो मूर्छनाएं न हो कर एक ही मूर्छना है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 मूर्छना के प्रथम दो प्रकारों का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 मूर्छना का अन्तिम प्रकार बताइए।

4.8 तीनों कालों में मूर्छना की विशेषता ——

4.8.1 प्राचीनकाल :–

प्राचीनकाल में मूर्छना एक निश्चित स्वर से आरम्भ होती थी जिसे ग्रह स्वर कहते थे। साथ ही मूर्छनाएं सम्पूर्ण होती थीं तथा उसमें क्रमिक आरोह–अवरोह होता था। इस तरह से प्राचीनकाल में तीन विशेषताएं प्रमुख थीं।

4.8.2 मध्यकाल :–

इस काल में जाति गायन के स्थान पर ग्राम राग प्रचलित हो गए थे। राग के लिए सम्पूर्ण होना आवश्यक बात नही मानी जाती थी अतः जब किसी राग के ग्रह स्वर से आरम्भ करके वर्जित स्वर को छोड़ते हुए आरोह–अवरोह करते थे तो वह मूर्छना कहलाता था। इस काल की विशेषता यह थी कि प्रत्येक राग का गायन प्राचीन समय के अनुसार ग्रह स्वर से आरम्भ होता था। इसलिए धीरे–धीरे किसी राग की प्रारम्भिक तान भी मूर्छना कहलाने लगी, इसलिए मध्य काल में मूर्छना का सम्पूर्ण होना भी आवश्यक नहीं रहा।

जैसे उदाहरण के लिए यदि राग मालकौंस का ग्रह स्वर मध्यम मान लिया जाए और रिषभ, पंचम को छोड़ते हुए ' म ध नि सां – नि ध म ग सा' इस प्रकार आरोह–अवरोह करें तो यह मध्यकाल की भाषा में मूर्छना हुई।

प्राचीनकाल की मूर्छना से ग्राम राग आदि उत्पन्न होते थे जबकि मध्यकाल में मूर्छना स्वयं बदल गई।

4.8.3 आधुनिक काल :–

आधुनिक काल में मूर्छना का प्रचार नहीं है और केवल षड़ज ग्राम ही विशेष रह गया है और प्रत्येक राग का ग्रह स्वर भी षड़ज स्वर रह गया है।

उत्तर भारत के कुछ पुराने गायक ऐसे हैं जो मूर्छना का प्रयोग कम्पन्न के अर्थ में ही करते हैं। भातखण्डे ने 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' के प्रथम भाग में मूर्छना के इस अर्थ को स्वीकारा है परन्तु अब इस प्रकार का प्रयोग नहीं होता क्योंकि मूर्छना का स्थान अब थाटों ने ले लिया है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –6

प्र0.1 प्राचीनकाल में मूर्छना का स्वरूप क्या था ?

प्र0.2 आधुनिक काल में मूर्छना का स्वरूप बताइए।

4.9 मेल पद्धति :–

इस पद्धति का मुख्य कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत रहा है या हम ये कह सकते हैं कि कर्नाटक संगीत में मेल पद्धति का प्रचार रहा। मध्यकाल में मेल राग पद्धति का आरम्भ माना जाता है। इस युग में राग वर्गीकरण की दूसरी पद्धति मेल पद्धति मानी जाती है। मध्यकाल में मेल पद्धति के अन्तर्गत रागों का विभाजन किया जाता था। इससे पहले कई पद्धतियां प्रचार में रहीं जैसे मूर्छना पद्धति, राग–रागिनी पद्धति इत्यादि। 14वीं शताब्दी में महापुरूष विद्यारण्य ने राग–रागिनी पद्धति में सुधार करके इसे 'मेल पद्धति' का नाम दिया। इस प्रकार इस पद्धति के आरम्भिक प्रर्वतक विद्यारण्य माने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने जो ग्रन्थ लिखे वे या तो प्रकाशित नहीं हुए या फिर वे आज उपलब्ध नहीं हैं अतः रामामात्या के 'स्वरमेल कलानिधि' को कर्नाटक संगीत पद्धति का आधार ग्रन्थ माना जाता है। 'संगीत सुधा' नामक पुस्तक से हमें विद्यारण्य के मेलों का पता चलता है। इन्होंने 15 मेल माने जो कि इस प्रकार हैं ––––

नट्ट, गुर्जरी, वराटी या वाराटी, श्री राग, भैरवी, शंकराभरण, अहीरी, बसन्त, सामन्त, कामबोदी , मुखारी, शुद्ध रागक्रिया, केदारगौल, हेजुज्जी, देशाक्षी।

इसके पश्चात् पं0 व्यंकटमखी ने 72 मेलों की गणितानुसार रचना की और उनमें से 19 मेल चुन कर अपने समस्त रागों का वर्गीकरण इन 19 मेलों के अन्तर्गत् किया। पं0 व्यंकटमखी ने अपनी पुस्तक 'चतुर्दण्डी

प्रकाशिका' में अपने 72 मेलों का गणितानुसार वर्णन किया है। पं0 व्यंकटमखी ने जो 19 मेल चुने वे इस प्रकार थे ————

मुखारी, सामवराली, भूपाल, बसंत भैरवी, गौल, आहरी, भैरवी, श्रीराग, हेजुज्जी, काम्भोजी, शंकराभरण, सामन्त, देशाक्षी, नाट या नट, शुद्ध वराली, पन्तुवराली, शुद्ध रामक्रिया, सिंहरव, कल्याणी।

रामामात्या के स्वरमेल कलानिधि तथा व्यंकटमखी के चतुर्दण्डी प्रकाशिका के बाद 'राग लक्षणम्' नामक ग्रन्थ लिखा गया। इस ग्रन्थ के लेखक ने भी 72 मेल माने और लगभग 500 जन्य रागों की उत्पत्ति इन मेलों से बताई। इसी काल में तन्जौर के महाराजा तुलाजीराव भोसले ने 'संगीत सारामृत' पुस्तक लिखी और उसमें 72 मेलों को ही माना लेकिन उन्होंने उनमें से 21 मेलों को चुना और उनके अन्तर्गत् दस जन्य रागों को रखा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 7

प्र0.1 विद्यारण्य ने कितने मेल माने ? उनके नाम लिखिए।

प्र0.2 व्यंकटमुखी ने कितने मेलों की रचना की ?

4.10 थाट राग पद्धति :–

इस पद्धति के निर्माणकर्ता पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे माने जाते हैं। इन्होंने दक्षिणी मेल पद्धति का अनुसरण करते हुए अपनी पुस्तक 'अभिनव राग मंजरी' में दस थाट वाली पद्धति का निर्माण कर उसका वर्णन किया है। उन्होंने इस पद्धति का निर्माण कर अपने सभी रागों को इन दस थाटों के अन्तर्गत् विभाजित किया। ये दस थाट इस प्रकार हैं ————

बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी, भैरव, पूर्वी, मारवा और तोड़ी।

जनक थाटों में पं0 भातखण्डे ने केवल सप्त स्वरों का ही प्रयोग मान्य रखा है। थाट पद्धति की मूल स्वरावृति में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं हुआ है।

थाट पद्धति यूं तो आधुनिक काल में पूर्ण रूप से स्वीकार की गई है लेकिन फिर भी इस पद्धति में कुछ असमानताएं या कमियां पाई जाती हैं।

मध्यकालीन मेल पद्धति में मेल संख्या में मतान्तर होने से यह पद्धति अधिक देर तक प्रचलित न रह सकी परन्तु आधुनिक थाट पद्धति, मेल पद्धति का ही अनुकरण है। आधुनिक थाट शब्द मेल का ही पर्यायवाची है

और थाट की परिभाषा भी वही है जो मेल की थी। मेल की परिभाषा के अन्तर्गत लिखा है – **" मेलः स्वरसमूहः स्याद्रांगव्यंजन शक्तिमान"** अर्थात् वह स्वर समूह मेल कहलाता है जो राग निर्मित में सक्षम हो। पं0 भातखण्डे के अनुसार, " स्वरों की वह रचना जिसमें अनेक रागों को उत्पन्न करने की क्षमता हो, रंजकता की आवश्यकता न हो, सातो स्वरों का प्रयोग क्रमानुसार हो, वह थाट कहलाता है। पं0 भातखण्डे ने मेल–राग–वर्गीकरण के आधार पर ''जनकजन्य पद्धति'' जिसमें स्वरों के कोमल–तीव्र भेदों का वर्णन है, को राग वर्गीकरण के लिए उचित प्रणाली माना।

पं0 भातखण्डे ने पं0 व्यंकटमुखी के माने 72 थाटों में से दस थाटों को चुना और हमारे यहाँ जितने भी राग गाये–बजाये जाते थे उन सबके स्वरों और अंग–प्रत्यंगों को देख कर उन्हें जिस थाट में रखा जा सकता था रख दिया। रागों का वर्गीकरण करते हुए उन्होंने तीन बातों को ध्यान में रखा। राग के कोमल और तीव्र स्वरों को देखकर, दूसरा राग के अंग को देख कर और तीसरा राग की प्रकृति को देखकर, जैसे हमीर, केदार, कामोद, छायानट, गौड़सारंग आदि दोनों मध्यम वाले राग कल्याण थाट के अन्तर्गत् रखे क्यों कि इन सबके स्वर, अंग और प्रकृति कल्याण थाट से मिलती है। इसी प्रकार अन्य रागों को भी उनसे सम्बन्धित थाटों के अन्तर्गत् रखा।

4.10.1 दस थाटों के नाम :–

दस थाटों के नाम और स्वर इस प्रकार हैं –––

	थाट के नाम	**स्वर**
1.	बिलावल	सा रे ग म प ध नि
2.	कल्याण	सा रे ग म॑ प ध नि
3.	खमाज	सा रे ग म प ध नि॒
4.	काफी	सा रे ग॒ म प ध नि॒
5.	आसावरी	सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒
6.	भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नि
7.	भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒
8.	पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि

9. मारवा — सा रे॒ ग म॑ प ध नि

10. तोड़ी — सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि

थाट राग पद्धति को जनक जन्य पद्धति भी कहते हैं। दस थाटों में से जो दस सम्पूर्ण राग उत्पन्न होते हैं उन्हें जनक राग कहा जाता है तथा उन जनक रागों में से जो अन्य राग उत्पन्न होते हैं उन्हें जन्य राग कहते हैं। अतः थाट राग पद्धति का ही दूसरा नाम जनक–जन्य पद्धति है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 8

प्र0.1 थाट राग पद्धति के विषय में संक्षेप में बताइए।

प्र0.2 बिलावल, कल्याण, भैरवी तथा तोड़ी थाट के स्वर लिखिए।

4.11 सारांश :–

स्वरों से ग्राम और ग्राम से मूर्च्छओं की उत्पत्ति होती है। हमारे संगीत में तीन ग्रामों का उल्लेख मिलता है। जिनमें से गान्धार ग्राम के विषय में कहा जाता है कि यह ग्राम पूर्व में ही लुप्त हो गया था। शेष दो ग्रामों और उनके सात शुद्ध स्वरों से 14 मूर्च्छनाओं का निर्माण किया गया। इन मूर्च्छनाओं के आधार पर ही प्राचीन काल में समस्त जाति गायन किया जाता था। जब मूर्च्छना पद्धति धीरे–धीरे लुप्त हो गई तो इसका स्थान मेल पद्धति ने ले लिया। व्यंकटमुखी ने 72 मेलों की रचना की और उनमें से 19 मेल चुने गए और तब समस्त गायन–वादन इन मेलों के अन्तर्गत होने लगा। धीरे–धीरे इस पद्धति का प्रचलन भी कम हो गया और इसका स्थान थाट राग पद्धति ने ले लिया। आज आधुनिक काल में इसी थाट राग पद्धति का प्रयोग किया जाता है और समस्त रागों को दस थाटों के अन्दर विभाजित किया गया है। लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं जो इन दस थाटों के अन्तर्गत् नही आते।

4.12 शब्दकोष :–

1 स्वरावृति – स्वरों का चक्र

2 मतान्तर – मतों या विचारों का अन्तर

3 अनुकरण – अनुसरण

4 सक्षम –स्मर्थवान

5 अंग–प्रत्यंग – रागों का हर एक लक्षण या अंग

4.13 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 मूर्छना की परिभाषा क्या है ?

उ0. **मूर्छना की परिभाषा :–**

प्राचीनकाल में ग्राम के किसी भी स्वर को षड़ज मान कर क्रम से आरोह–अवरोह करने को 'मूर्च्छना' कहते थे। प्राचीन मूर्छना आधुनिक थाट के समान केवल एक स्वर समूह था। अन्तर केवल इतना है कि मूर्छना में आरोह–अवरोह होता था और वे गाईं भी जाती थीं जबकि थाट में केवल आरोह होता है और वे गाए नहीं जाते।

संगीत के क्षेत्र में मूर्छना का सामान्य अर्थ है सात स्वरों का क्रम से आरोह–अवरोह करना। जब क्रम से सातों स्वरों का आरोह–अवरोह होगा तब वह स्वर रचना 'मूर्छना' कहलाती है। जैसे ––

सा रे ग म प ध नि

नि ध प म ग रे सा

यदि इस प्रकार 'सा' से क्रमयुक्त सात स्वरों का आरोह–अवरोह करें तो यह षड़ज ग्राम की मूर्छना कहलाएगी। इसी प्रकार यदि ' म प ध नि सां रें गं ' करेंगे तो यह मध्यम ग्राम की मूर्छना कहलाएगी।

जिस प्रकार आज रागों की उत्पत्ति थाटों से मानी जाती है उसी प्रकार प्राचीनकाल में भिन्न–भिन्न मूर्छनाएं होती थीं जिनके आधार पर राग गाए–बजाए जाते थे। प्राचीन ग्रन्थकार अपने किसी राग का वर्णन करते समय यह नही बताते थे कि इसमें अमुक स्वर कोमल या तीव्र हैं, अपितु वे यह कहते थे कि इसमें अमुक ग्राम की अमुक मूर्छना है।

जैसे उदाहरण के लिए षड़ज ग्राम की एक मूर्छना है 'उत्तर मंद्रा', यदि हम आज के आधार पर इस मूर्छना से उत्पन्न राग का उदाहरण लें तो वह राग 'जय–जयवन्ती' बनेगा अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि इस राग में षड़ज ग्राम की उत्तर मन्द्रा मूर्छना का प्रयोग हुआ है।

इसके अतिरिक्त यह भी नहीं बताना पड़ता था कि अमुक राग में कौन से स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

प्र0.2 मूर्छना की परिभाषा करते समय किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है ?

उ0. **मूर्छना करते समय निम्न बातों का विशेष महत्व है :–**

1 सबसे पहले एक निश्चित श्रुति व्यवस्था करने वाले स्वर समूह की व्यवस्था करना।

2 इस नियत स्वर समूह में स्वर को क्रमशः आरम्भ मान कर आरोह–अवरोह करना होगा।

3 जब किसी स्वर को आरम्भ स्वर माना हो तो उसे ही षड़ज मान कर स्वरों की व्यवस्था करना।

प्र0.3 मूर्छना कितने प्रकार की बताई गई हैं ?

उ0. **मूर्च्छना के प्रकार :–**

मूर्छना चार प्रकार की कही गई है :–

1 संपूर्णा — सात स्वरों से गाई जाने वाली 'संपूर्णा'।

2 षाड़विता — छः स्वरों से गाई जाने वाली 'षाड़विता'।

3 औडविता — पाँच स्वरों से गाई जाने वाली 'औडविता'।

4 साधारणी कृता — अन्तर गान्धार और काकली स्वरों से गाई जाने वाली 'साधारणी कृता'।

प्र0.4 मूर्छना की कुल कितनी संख्याएं बताई गई हैं ?

उ0. **मूर्छना की संख्या**

एक ग्राम में 7 स्वर होते हैं। अतः प्रत्येक ग्राम से 7 मूर्छनाओं की रचना सम्भव है। अतः षडज, गन्धार और मध्यम ग्रामों से कुल 7 × 3 = 21 मूर्छनायें बन जाती हैं। मूर्छना की कुल संख्या 21 है।

प्र0.5 षड़ज ग्राम की मूर्छनाओं को स्वरों सहित बताइए।

उ0. **षड़ज ग्राम की मूर्छनाएं :–**

4.5.1 उत्तरमंद्रा – सा रे ग म प ध नि सां। या सा रे ग म प ध नि ध प म ग रे सा।

4.5.2 रंजनी – ऩि सा रे ग म प ध नि। या ऩि सा रे ग म प ध प म ग रे सा ऩि।

4.5.3 उतरायता – ध़ ऩि सा रे ग म प ध। या ध़ ऩि सा रे ग म प म ग रे सा ऩि ध़।

4.5.4 शुद्ध षड़जा–प़ ध़ ऩि सा रे ग म प। या प़ ध़ ऩि सा रे ग म ग रे सा ऩि ध़ प़।

4.5.5 मत्सरीकृता –म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग म। या म़ प़ ध़ ऩि सा रे ग रे सा ऩि ध़ प़ म़।

4.5.6 अश्वक्रान्ता–ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग। या ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे सा नि़ ध़ प़ म़ ग़।

4.5.7 अभिरूदगता–ऱे ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे। या ऱे ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा नि़ ध़ प़ म़ ग़ ऱे।

प्र0.6 मध्यम ग्राम की मूर्छना के स्वरों को दूसरे प्रकार से लिखिए।

उ0. मध्यम ग्राम की मूर्छनाओं को एक अन्य प्रकार से भी समझा जा सकता है ––

1 सौवेरी – म प ध नि सां रें गं मं।

2 हृष्यका – प ध नि सां रें गं मं पं।

3 पौरवी – ध नि सां रें गं मं पं धं।

4 मार्गी – नि सां रें गं मं पं धं निं।

5 शुद्ध मघ्या – सां रें गं मं पं धं निं सां।

6 कलोपनता – रें गं मं पं धं निं सां रें ।

7 हरिणाश्वा – गं मं पं धं निं सां रें गं।

प्र0.7 मूर्छना के प्रथम दो प्रकारों का वर्णन कीजिए।

उ0. **मूर्छना का पहला प्रकार / भेद – षड़ज (सा)**

मूर्छना का पहला प्रकार / भेद – "षड़ज (सा)(1) पहली मूर्छना षड़ज से प्रारम्भ होगी। अतः 4थी पर सा , 7 वीं पर रे , 9 वीं पर ग , 13 वीं पर म , 17 वीं पर प , 20 वीं पर ध और 22 वीं श्रुति पर नि आएगा।

इसमें गंधार और निषाद पिछले स्वर रिषभ और धैवत से क्रमशः दो–दो श्रुति ऊँचे हैं । अतः ये दोनों स्वर कोमल हो जाएंगे और यह मूर्छना आधुनिक काफी थाट के समान होगी । यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि दो श्रुतियों से अर्ध स्वर (सेमी टोन) और 3 अथवा 4 श्रुतियों से पूर्ण स्वर (होल टोन) होता है ।

समानता :– काफी थाट के समान

दूसरा प्रकार – मन्द्र निषाद (नि़)

द्वितीय मूर्छना में मन्द्र नि को सा मानकर षडज ग्राम के स्वरों पर क्रमिक आरोह–अवरोह करेंगे । इसलिये सातों स्वर क्रमशः 2 , 4 , 3 , 2 , 4 , 4 और 3 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे । यह आधुनिक बिलावल थाट के समान होगी , क्योंकि इसका कोई भी स्वर कोमल नहीं है । केवल मध्यम की 2 श्रुतियाँ हैं , अतः नियमानुसार म को कोमल होना चाहिये , किन्तु मध्यम कोमल नहीं होता । वास्तव में कोमल म को ही शुद्ध म कहते हैं ।

समानता :– आधुनिक बिलावल थाट के समान।

प्र0.8 मूर्छना का अन्तिम प्रकार बताइए।

उ0. मूर्छना का अन्तिम अथवा सांतवा प्रकार – रिषभ (ऱे)

सातवीं मूर्छना मन्द्र के रिषभ से प्रारम्भ होगी और उसके स्वर क्रमशः 3 , 2 , 4 , 4 , 3 , 2 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे । इसमें रे , ग , ध और नि स्वर कोमल होंगे । यद्यपि ग भी 4 श्रुति ऊँचा है किन्तु कोमल रे से । इसलिये ग भी कोमल हो जायेगा । इसी प्रकार ध की 2 श्रुति होने पर यह भी कोमल हो जायेगा और धैवत के कोमल हो जाने से नि भी कोमल हो जावेगा । यह मूर्छना भैरवी थाट के समान होगी । ग्राम–तालिका से यह भी स्पष्ट हो जाएगा ।

समानता :– भैरवी थाट के समान।

प्र0.9 प्राचीनकाल में मूर्छना का स्वरूप क्या था ?

उ0. **प्राचीनकाल में मूर्छना का स्वरूप :–**

प्राचीनकाल में मूर्छना एक निश्चित स्वर से आरम्भ होती थी जिसे ग्रह स्वर कहते थे। साथ ही मूर्छनाएं सम्पूर्ण होती थीं तथा उसमें क्रमिक आरोह–अवरोह होता था। इस तरह से प्राचीनकाल में तीन विशेषताएं प्रमुख थीं।

प्र0.10 आधुनिक काल में मूर्छना का स्वरूप बताइए।

उ0. **आधुनिक काल में मूर्छना का स्वरूप :–**

आधुनिक काल में मूर्छना का प्रचार नहीं है और केवल षड़ज ग्राम ही विशेष रह गया है और प्रत्येक राग का ग्रह स्वर भी षड़ज स्वर रह गया है।

उत्तर भारत के कुछ पुराने गायक ऐसे हैं जो मूर्छना का प्रयोग कम्पन्न के अर्थ में ही करते हैं। भातखण्डे ने 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' के प्रथम भाग में मूर्छना के इस अर्थ को स्वीकारा है परन्तु अब इस प्रकार का प्रयोग नहीं होता क्योंकि मूर्छना का स्थान अब थाटों ने ले लिया है।

प्र0.11 विद्यारण्य ने कितने मेल माने ? उनके नाम लिखिए।

उ0. 'संगीत सुधा' नामक पुस्तक से हमें विद्यारण्य के मेलों का पता चलता है। इन्होंने 15 मेल माने जो कि इस प्रकार हैं ————

नट्ट, गुर्जरी, वराटी या वाराटी, श्री राग, भैरवी, शंकराभरण, अहीरी, बसन्त, सामन्त, कामबोदी , मुखारी, शुद्ध रागक्रिया, केदारगौल, हेजुज्जी, देशाक्षी।

प्र0.12 व्यंकटमुखी ने कितने मेलों की रचना की ?

उ0. पं0 व्यंकटमखी ने 72 मेलों की गणितानुसार रचना की और उनमें से 19 मेल चुन कर अपने समस्त रागों का वर्गीकरण इन 19 मेलों के अन्तर्गत् किया। पं0 व्यंकटमखी ने अपनी पुस्तक 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' में अपने 72 मेलों का गणितानुसार वर्णन किया है। पं0 व्यंकटमखी ने जो 19 मेल चुने वे इस प्रकार थे ————

मुखारी, सामवराली, भूपाल, बसंत भैरवी, गौल, आहरी, भैरवी, श्रीराग, हेजुज्जी, काम्भोजी, शंकराभरण, सामन्त, देशाक्षी, नाट या नट, शुद्ध वराली, पन्तुवराली, शुद्ध रामक्रिया, सिंहरव, कल्याणी।

प्र0.13 थाट राग पद्धति के विषय में संक्षेप में बताइए।

उ0. **थाट राग पद्धति :–** इस पद्धति के निर्माणकर्ता पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे माने जाते हैं। इन्होंने दक्षिणी मेल पद्धति का अनुसरण करते हुए अपनी पुस्तक 'अभिनव राग मंजरी' में दस थाट वाली पद्धति का निर्माण कर उसका वर्णन किया है। उन्होंने इस पद्धति का निर्माण कर अपने सभी रागों को इन दस थाटों के अन्तर्गत् विभाजित किया। ये दस थाट इस प्रकार हैं ————

बिलावल, काफी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी, भैरव, पूर्वी, मारवा और तोड़ी।

जनक थाटों में पं0 भातखण्डे ने केवल सप्त स्वरों का ही प्रयोग मान्य रखा है। थाट पद्धति की मूल स्वरावृति में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं हुआ है।

थाट पद्धति यूं तो आधुनिक काल में पूर्ण रूप से स्वीकार की गई है लेकिन फिर भी इस पद्धति में कुछ असमानताएं या कमियां पाई जाती हैं।

मध्यकालीन मेल पद्धति में मेल संख्या में मतान्तर होने से यह पद्धति अधिक देर तक प्रचलित न रह सकी परन्तु आधुनिक थाट पद्धति, मेल पद्धति का ही अनुकरण है। आधुनिक थाट शब्द मेल का ही पर्यायवाची है और थाट की परिभाषा भी वही है जो मेल की थी। मेल की परिभाषा के अन्तर्गत लिखा है – **" मेलः स्वरसमूहः**

स्याद्रांगव्यंजन शक्तिमान" अर्थात् वह स्वर समूह मेल कहलाता है जो राग निर्मित में सक्षम हो। पं0 भातखण्डे के अनुसार, " स्वरों की वह रचना जिसमें अनेक रागों को उत्पन्न करने की क्षमता हो, रंजकता की आवश्यकता न हो, सातो स्वरों का प्रयोग क्रमानुसार हो, वह थाट कहलाता है। पं0 भातखण्डे ने मेल–राग–वर्गीकरण के आधार पर "जनकजन्य पद्धति" जिसमें स्वरों के कोमल–तीव्र भेदों का वर्णन है, को राग वर्गीकरण के लिए उचित प्रणाली माना।

प्र0.14 बिलावल, कल्याण, भैरवी तथा तोड़ी थाट के स्वर लिखिए।

उ0.

1.	बिलावल	सा रे ग म प ध नि
2.	कल्याण	सा रे ग म॑ प ध नि
3.	भैरवी	सा रे ग म प ध नि
4.	तोड़ी	सा रे ग म प ध नि

4.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1 भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण) प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद 2014।

2 संगीत निबन्धावली, संकलन–डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, 1998, प्रकाशक–संगीत कार्यालय, हाथरस, इलाहाबाद।

3 संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

4.15 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र02 मेल थाट पद्धति के विषय में प्रकाश डालिए।

प्र03 थाट राग पद्धति का विस्तृत वर्णन कीजिए।

UNIT – III

LESSON - 5

Vedic Music And Music of Ramayana

वैदिक संगीत एवं रामायण कालीन संगीत

STRUCTURE :

5.1 भूमिका

5.2 उदेश्य

5.3 वैदिक काल का संगीत

5.3.1 वैदिक काल के स्वर

5.3.2 वैदिक काल में नृत्य

5.3.3 वैदिक काल में तंत्री वाद्य

5.3.4 वैदिक काल में अवनद वाद्य

5.3.5 वैदिक काल में सुषिर वाद्य

5.3.6 वैदिक काल में घन वाद्य

5.4 रामायण काल का संगीत

5.5 रामायण काल में गायन, वादन एवं नृत्य

5.5.1 गायन

5.5.2 स्वर

5.5.3 मूर्च्छना

5.5.4 जाति

5.5.5 ताल एवं लय

5.5.6 वादन

5.5.7 नृत्य

5.6 रामायण काल में रावण एक महान संगीतज्ञ

5.7 सारांश

5.8 शब्दकोष

5.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

5.1 भूमिका :–

वैदिक युग का आरम्भ आर्यों के आगमन से माना जाता है। इस काल में ब्राह्मण ही सभी वर्गों को संगीत की शिक्षा दिया करते थे। वेदों में संगीत के विषय की चर्चा की गई है। ऋग्वेद और सामवेद में इस युग के संगीत की चर्चा भी मिलती है। इस युग में संगीत कलाकारों का चरित्र उच्चकोटी का हुआ करता था और वे संगीत की तपस्या बड़े ही संयम से किया करते थे। इसी प्रकार रामायण काल में भी संगीत को ईश्वर आराधना के साथ–साथ जनरंजन के लिए भी प्रयोग किया जाता था। रामायण की कई घटनाओं में संगीत के प्रयोग एवं उसके प्रचलन का वर्णन मिलता है कि किस प्रकार का संगीत उस काल में प्रचलित रहा।

5.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य उस संगीत के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है जो कि वैदिक काल और रामायण काल में प्रचलित था। उस समय के संगीत का क्या रूप था और वह किस प्रकार विकसित होता गया, यही जानना हमारा ध्येय है।

5.3 वैदिक काल का संगीत :–

वैदिक संगीत इस काल की बड़ी विशेषता रही है। इस काल के लोग आध्यात्म की ओर बहुत झुके हुए थे और ये अनुभव करते थे कि ईश्वर की सत्ता से, संगीत अलग नही है। वैदिक काल में हिन्दु धर्म के चारों वेदों की रचना हुई। वैदिक काल में संगीत का बहुत प्रचार था , इसका प्रमाण हमें वेदों से भली प्रकार मिलता है। वैदिक युग का आरम्भ आर्यों के आगमन से माना जाता है। भारतीय संस्कृति के आधार वेद माने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान भी वेदों को संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने चारों वेदों के चार उपवेदों का इस प्रकार विवेचन किया है –– ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र। सामवेद के रूप में गान्धर्व वेद की स्थापना हुई। इसी आधार पर नाटयशास्त्र और बृहदेशी आदि ग्रंथों की रचना हुई।

वैदिक काल में जिनमें से 'सामवेद' पूर्णतया संगीतमय है। समस्त संगीत शास्त्र की उत्पत्ति 'सामवेद' से हुई है। ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋचा कहते थे। ये ऋचाएं जब स्वर और ताल सहित गाई जाती थीं तब वे साम कहलाती थीं। साम शब्द सा+आम अर्थात् सा – ऋचा और आम – आलाप से बना है जिससे तात्पर्य है 'आलाप से युक्त गायन'। इन ऋचाओं के संगीतमय परायण से ही सामगान का प्रथम विकास ऋषियों द्वारा किया गया। कहा जाता है कि सामवेद की रचना ही ऋषियों ने संगीत के उदेश्य से ही की। सामवेद संगीत शास्त्र का उद्‌गम ग्रन्थ माना जाता है। इसके मंत्रों का पाठ आज भी किया जाता है। सामवेद के स्वरों से ही आधुनिक संगीत शास्त्र के स्वरों की उत्पत्ति हुई है। सामगायन में पहले तीन स्वर प्रयुक्त होते थे – उदात्त, उनुदात्त और स्वरित। उदात्त का अर्थ था ऊँचा और अनुदात्त का अर्थ था नीचा और स्वरित को उदात्त और अनुदात्त के बीच का स्वर मानते थे। धीरे–धीरे स्वरों की संख्या तीन से चार, चार से पाँच और पाँच से सात हो गई। वैदिक काल में ही सात स्वर विकसित हो गए थे जो कि इस प्रकार थे – क्रुष्ठा, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ या अतिस्वर। वैदिक काल में ग्रामों का जन्म भी हो चुका था। 'नारदीय शिक्षा' में लिखा है कि सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएं और उन्नचास तानें मिलकर सामवेद के स्वर मण्डल का निर्माण करते थे।

इस काल में विभिन्न प्रकार के वाद्य भी प्रचार में आ गए थे। इस काल में गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाएं विकसित हुई। संगीतज्ञों को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। सभी परिवारों में सुबह–शाम ईश्वर की आराधना गा–बजा कर की जाती थी। उनका गायन, वादन एवं ताल तथा स्वर में बंधा होता था। सार्वजनिक रूप में भी संगीत प्रदर्शन हुआ करता था। इस युग में शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ लोक संगीत की धारा भी प्रचलित हो गई थी। लोक संगीत की रचना प्रायः ब्राह्मण लोग ही करते थे। इन लोगों का विश्वास था कि कला के द्वारा समाज का चरित्र उज्जवल बनाया जा सकता है।

वैदिक काल में तत् वाद्य, अवनद्ध वाद्य, घन वाद्य तथा सुषिर वाद्य आदि प्रचलित थे। वैदिक संगीत में वीणा वाद्य का प्रयोग विशेष लोकप्रिय रहा है। इसका गायन–वादन से मुख्य सम्बन्ध था। इस वाद्य को नारियां अधिक बजाया करती थीं और साथ ही वे कंठ संगीत में भी दिलचस्पी लेती थीं। वैदिक संगीत में वीणा का अत्यधिक प्रयोग यह सिद्ध करता है कि संगीत ने उस समय बड़ी उन्नति कर ली थी।

वैदिक काल में नृत्य कला भी उन्नति पर थी। स्त्री और पुरूष के सामूहिक नृत्य भी हुआ करते थे। सार्वजनिक आयोजनों में नर्तकियाँ खुलकर भाग लिया करतीं थीं क्योंकि उस समय समाज में गायक, वादकों एवं नर्तकों को उच्च स्थान प्राप्त था। संगीत समारोह में सभी वर्गों के पुरूष और स्त्रियाँ कला प्रदर्शित करती थीं और पुरूष वर्ग कंठ संगीत का सुन्दर प्रर्दशन किया करते थे। वैदिक युग में धार्मिक मण्डलियों ने संगीत के आध्यात्मिक रूप का विकास किया। इस युग में संगीत और धर्म एक हो गए थे। दोनों के मिलन से ही वैदिक संगीत का जन्म हुआ। उस समय कोई भी धार्मिक संस्कार संगीत के बिना पूर्ण नहीं होता था। ये विश्वास किया जाता था कि ईश्वर की सत्ता संगीत से अलग नहीं है। इस युग में आर्चिका, गायिका और सामिका तीन प्रकार की गायन शैलियाँ थीं। आर्चिका में एक ही स्वर पर समस्त गायन होता था। इसका प्रयोग निजी प्रार्थना तथा श्लोकों को कण्ठस्थ करने में होता था। गायिका शैली में एक स्वर और मिला कर दो स्वरों में समस्त गायन होता था। सामिक में एक स्वर ऊपर का और एक स्वर नीचे का और सम्मिलित करके गायन होता था। जब कभी नियमानुसार जनता के समक्ष गायन होता था तब इसी पद्धति से किया जाता था।

वैदिक काल के संगीत को हम अलग–अलग रूप में इस प्रकार वर्णित कर सकते हैं –––

5.3.1 वैदिक काल के स्वर :–

सामवेद पूर्ण रूप से संगीतमय माना जाता है। कहा जाता है कि इसी वेद के द्वारा संगीत को नियम और विधान में बांधा गया था। ऐसा कहा जाता है कि सामगान में पहले तीन स्वरों का प्रयोग होता था। ये तीन स्वर थे – उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। आगे चल कर स्वरों की संख्या बढ़कर सात हो गई। इस प्रकार उदात्त से निषाद और गान्धार, अनुदात्त से रिषभ और धैवत तथा स्वरित से षड़ज, मध्यम और पंचम की सृष्टि हुई थी।

सामगान के मुख्य तीन भाग थे –– प्रस्ताव, प्रतिहार तथा उदगीत। इसके अतिरिक्त इनके तीन उपांग थे –– हिंकार, उपद्रव तथा निधान। यही ध्रुपद के चार पद बने। हिंकार को गायन आरम्भ करने से पूर्व गाते थे। निधान को गायन समाप्त होने के पश्चात् गाते थे। वैदिक काल में संगीत भक्ति के लिए ही था। इस काल में कला तथा धर्म को पूरी तरह मिला दिया गया था जिससे कलाकार धर्म से विमुख न हो जाए।

साहित्य तथा संगीत का आपसी सम्बन्ध बहुत अधिक था। यज्ञों आदि में मंत्रों को गाया जाता था। हर मंत्र के लिए अलग–अलग लय, छंद, ताल, स्वर आदि थे। संगीत मुख्य रूप से यज्ञों का एक अंग था। यज्ञों के

अवसर पर अग्नि कुंड के चारों ओर नृत्य होता था। वैदिक संगीत प्रस्त्वा या प्रस्तार, हुंकार, उदगीय, प्रतिहार, उपद्रव, निधान तथा प्रणव इन सात भागों में बंटा था। स्वरों के प्रस्तुतिकरण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता स्वर साधना रही है।

5.3.2 वैदिक काल में नृत्य :–

वैदिक काल में गायन के साथ–साथ नृत्य कला भी प्रचलित थी। इसका प्रमाण ऋगवेद में भी है। नृत्य करती हुई अनेक प्राचीन मूर्तियाँ भी इसका प्रमाण देती हैं कि वैदिक काल में नृत्य कला प्रचलित थी। कहा जाता है कि वैदिक काल में रज्जू नृत्य, अरूण नृत्य, पुष्प नृत्य, वसंत नृत्य आदि प्रचलित थे। इस काल में कई ऐसी मण्डलियां भी बन गई थी जिनका कार्य संगीत के आध्यात्मिक तथा शास्त्रीय स्तर का विकास करना था। कहा जाता है कि इस युग में उस व्यक्ति को भाग्यशाली समझा जाता था जो संगीत के क्षेत्र में कार्य करता था।

गायन को तो इस काल में महत्वपूर्ण माना ही जाता था लेकिन वादन संगीत को भी संगीत का महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। वादन के अन्तर्गत् सर्वप्रथम वाद्यों का विवेचन आता है। भरत एवं अन्य आचार्यों ने शास्त्रीय विवेचन में चार प्रकार के वाद्यों –– तत्, सुषिर, घन तथा अवनद् वाद्यों का उल्लेख किया है। वैदिक काल में वाद्यों का यह विभाजन तो नहीं मिलता लेकिन इन चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिल जाता है।

5.3.3 वैदिक काल में तंत्री वाद्य :–

वीणा इस वर्ग का प्रमुख वाद्य है। इसके अनेक उल्लेख वैदिक साहित्य में यत्र–तत्र मिलते हैं। सम्भवतः वीणा वाद्य इस काल के लोकप्रिय तथा सर्वाधिक प्रचलित वाद्यों में से एक थी। अनेक प्रकार की वीणाएं इस काल में प्रचलित रहीं जैसे –– बाज वीणा, कर्करी वीणा, काण्ड वीणा, अपघाटिला वीणा, गोधा वीणा आदि। 'बाण' नामक तंत्री वाद्य वैदिक काल का एक लोकप्रिय वाद्य माना जाता था। इस वाद्य की विशेषता इसमें लगे 100 तारों के कारण थी जिसकी तुलना उस समय पुरूष की 100 वर्ष की आयु से की जाती थी। महाव्रत यज्ञ के अवसर पर इस वीणा का वादन इसके धार्मिक महत्व को भी दर्शाता है। इस शत तंत्री बांण वीणा के अवशेष आज भी सौ तारों वाले प्रचलित कश्मीरी वाद्य संतूर, दक्षिण वाद्य याल एवं कात्यायनी वीणा के रूप में देख सकते हैं। कर्करी वीणा एवं कण्ड वीणा आदि प्रकार सम्भवतः तंत्री संख्या, आकार, वादन–विधि, आदि भेदों के आधार पर बनाए जाते होंगे। अपघटिला वीणा एक ऐसा प्रकार है जिसके विषय में विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह मुख से बजाई जाने वाली वीणा रही है तथा इसका प्रयोग यज्ञ के अवसर पर गायकों की पत्नियां भी करती थीं।

5.3.4 वैदिक काल के अवनद् वाद्य :–

इस वर्ग के अन्तर्गत् सर्वाधिक प्रचलित वाद्य दुन्दभि, भू–दुंदभि आदि थे। दुंदभि चर्म से मढ़ा वाद्य था तथा भू–दुंदभि वाद्य भूमि में गढा खोद कर उस पर चर्म को मढ़ कर बनाया जाता था। यह चर्म रोम युक्त तथा वृषभ का होना आवश्यक था। इस वाद्य का प्रयोग वीरों को उत्साहित करने के लिए होता था। इतना ही नहीं विजय प्राप्ति के लिए दुंदभि वाद्य की स्तुति भी की जाती थी। इस वाद्य को शक्ति का प्रतीक माना जाता था। दुंदभि न केवल एक रण वाद्य था अपितु इसका प्रयोग यज्ञ जैसे धार्मिक कार्यों में भी किया जाता था। इसके अतिरिक्त पणव, र्दुदुर, डमरू, मृदंग आदि वाद्य भी प्रचलित थे। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि इस काल में अवनद वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान था।

5.3.5 वैदिक काल के सुषिर वाद्य :–

सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत् वेणु वाद्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा। जैसा कि सर्वविदित है कि बांस को पहले वेणु कह कर पुकारा जाता था अतः बांस से बने होने के कारण इस वाद्य को वेणु नाम दिया गया। इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में वंशी वाद्य के लिए 'तूणव' संज्ञा बहुतायत से प्रयोग की गई है। यज्ञ आदि के अवसर पर भी तूणव वाद्य का प्रयोग किया जाता था। जिस प्रकार वैदिक काल में वीणा वादकों और गायकों का एक वर्ग बना होता था उसी प्रकार वंशी वादकों का भी एक वर्ग था।

5.3.6 वैदिक काल के घन वाद्य :–

घन वाद्यों के अन्तर्गत् लय सम्बन्धी वाद्य आते हैं जैसे –– करताल, मंजीरा, घण्टी इत्यादि। इस वर्ग का वाद्य भी वैदिक काल से ही प्रचलित रहा है। इस वर्ग के अन्तर्गत् 'आघाट' या 'आघाटी' नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है। सायण ने इसे तंत्री वाद्य वीणा का ही एक प्रकार माना है परन्तु कीथ एवं मैक्डॉनल तथा विलियम विट्ने ने इसके विपरीत इसकी व्याख्या मंजीरा या करताल के रूप में की है।

वैदिक काल के संगीतज्ञ हाथ से ताल देने की पद्धति से भी पूर्णतः परिचित थे। हाथ से ताल देने वालों का भी उस समय एक वर्ग था। ये लोग 'पाणिघ्र' के रूप में जाने जाते थे, अर्थात् दोनों हाथों से ताल देने वाले। इस प्रकार इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल के संगीतज्ञ न केवल चतुर्विध वाद्यों व उनके प्रकारों से अपितु हस्तताल प्रक्रिया से भी परिचित थे।

इन सब तथ्यों से स्पष्ट है कि वैदिक युग में संगीत और सामवेद संगीत का रूप बड़ा उच्च और उज्जवल था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 वैदिक काल के संगीत का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्र0.2 वैदिक काल के तंत्री वाद्यों के विषय में बताएं।

5.4 रामायण काल का संगीत :–

रामायण भारतीय साहित्य का प्रथम महाकाव्य है। यह विश्व साहित्य के प्राचीनतम् महाकाव्यों की तुलना में भाषा, भाव, छन्द, रचना–विधान एवं रस व्यंजन की दृष्टि से उत्कृष्ट कृति प्रमाणित हुई है। इस ग्रंथ में प्रमुख चरित्र नायकों के साथ–साथ वैदिक कालीन चित्रमय संगीत, संगीतानुष्ठान एवं अनेकानेक वाद्ययन्त्रों का उल्लेख मिलता है। महर्षि बाल्मीकि ने लगभग 500 ई0 पू0 इस ग्रंथ की रचना की थी। कहा जाता है कि वे स्वयं वैदिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के संगीत के प्रकाण्ड पंडित थे। रामायण काल में सम्पूर्ण समाज पर संगीत की पावन एवं दिव्य आभा छिटक रही थी। इस काल में संगीत का आत्म सौंदर्य विकसित होने लगा था।

वैदिक काल की तरह इस काल में भी हर घर में प्रातःकाल होते ही ईश्वर आराधना की संगीतमय स्तुति प्रस्फुटित हो उठती थी। इस संगीतमयी प्रार्थना में घर के सभी सदस्य भाग लेते थे। गरीब–अमीर सभी ईश्वर आराधना किया करते थे। सार्वजनिक रूप से समाज में संगीत के आयोजन हुआ करते थे। इन आयोजनों में सर्वसाधारण भी विशेष रूचि लिया करते थे। रामायण काल का यह वर्णन भी हमें मिलता है कि श्री रामचन्द्र जी के विवाह उत्सव पर संगीत का आयोजन भी किया गया था। महिलाओं ने मंगल गीत गाए थे। उस अवसर पर वीणा तथा मृदंग आदि वाद्यों का वादन किया गया था। महिलाएं आनन्द विभोर होकर नृत्य में झूम उठी थीं। इसी प्रकार जब भगवान राम 14 वर्ष का वनवास काट कर अयोध्या वापिस लौटे थे तो उस समय भी अयोध्या नगरी को खूब सजाया गया था। नगर में स्थान–स्थान पर दीप जलाए गए थे और गायन–वादन का एक विशाल उत्सव मनाया गया था।

रामायण की रचना उत्तर वैदिककाल के लिए असाधारण, अमूल्य एवं महत्वपूर्ण घटना है। इस काल के संगीत में पावनता के दर्शन होते हैं। इस काल में राजा और प्रजा दोनों ही संगीत के परम पोषक थे। घर–घर में धार्मिक संगीत का प्रचार था। तत्कालीन ऋषि–मुनि संगीत की दैवी शक्ति से भली–भान्ति परिचित थे और वे अपनी रचनाओं द्वारा अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दिया करते थे और शिष्य समाज में जा कर उसका गायन किया करते थे। जिसका एक उदाहरण बाल्मीकि के शिष्य लव–कुश की रामायण शिक्षा तथा रामायण गान से स्पष्ट हो जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 रामायणकाल के संगीत का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

5.5 रामायण काल में गायन, वादन एवं नृत्य :–

5.5.1 गायन :–

कहा जाता है कि रामायण काल में संगीत के अन्तर्गत् शास्त्रीय संगीत बहुत विस्तृत हो चुका था। इस काल में अनेक स्थलों पर संगीत तथा उसके विभिन्न भागों जैसे –– वाद्यों, लय, ताल, मात्रा, अंगहार, अक्षर सम और संगीत मय दृश्यों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख हुआ है। इस काल में आतोद्य विधि, मूर्च्छना, जाति, राग, कैशिक राग व ग्राम रागादि का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। इस काल में काकु स्वरों का भी वर्णन मिलता है।

5.5.2 स्वर :–

संगीत में स्वर उसका प्रथम मूलभूत तत्व है। संगीत का ग्रंथ न होने के कारण सप्त स्वरों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन जहां सप्त जातियों एवं मूर्च्छनाओं का उल्लेख आता है वहाँ सप्त स्वरों की सत्ता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

5.5.3 मूर्च्छना :–

सप्त स्वरों को बारी–बारी से स्वरित या षड़ज मान कर आरोह–अवरोह सहित गायन–वादन करना मूर्च्छना कहलाता है। इसमें भिन्न–भिन्न स्वरान्तराल सहित स्वरावलियां प्राप्त होती हैं।

5.5.4 जाति :–

जाति शब्द की भी विस्तृत व्याख्या सर्व प्रथम भरत के ग्रंथ में प्राप्त होती है। भरत ने कुल 18 जातियों का उल्लेख किया है जबकि रामायण में केवल सात शुद्ध जातियों का ही उल्लेख मिलता है।

5.5.5 ताल एवं लय :–

संगीत का यह एक आवश्यक अंग है। लय समय की एक नियमित गति होती है। ताल नियमित गति द्वारा बनाई गई नियमबद्ध रचना होती है। ताल एवं लय को हाथ से एवं घन तथा अवनद वाद्यों के माध्यम दोनों से ही दिया जाता है जिसमें उस समय स्वास्तिक एवं करताल आदि वाद्य का प्रयोग किया जाता था।

5.5.6 वादन :–

रामायण काल में चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है। तत् वाद्यों के अन्तर्गत् विपंची वीणा, वल्लकी वीणा आदि, अवनद्व वाद्यों के अन्तर्गत् सभी प्रकार के ढोल सम्बन्धी वाद्य जैसे –– दुंदभि, मृदंग, पटह, डिमडिम, पणव आदि, सुषिर वाद्य के अन्तर्गत् वेणु, शंख, तुरही, रणभेरी आदि तथा घन वाद्यों के अन्तर्गत् करताल, मंजीरा, घण्टा, घण्टी, झांझ इत्यादि वाद्य प्रयोग किए जाते थे। इनमें से कुछ वाद्यों का प्रयोग संगीत कार्यक्रमों में तथा कुछ का प्रयोग युद्ध के अवसर पर किया जाता था। संगीत के अन्तर्गत् शास्त्रीय संगीत के प्रयोग का भी एक वर्णन रामायण काल में मिलता है। कहा जाता है कि जब सुग्रीव बहुत समय तक वापिस श्री राम से मिलने नहीं गए तब लक्ष्मण जी उससे मिलने और उसे याद दिलाने के लिए सुग्रीव के महल पहुंचे। जब उन्होंने सुग्रीव के अन्तःमहल में प्रवेश किया तो उन्होंने वहां सुग्रीव को वीणा वादन के साथ शुद्ध गायन सुनते देखा।

5.5.7 नृत्य :–

नृत्य के भी अनेक उल्लेख रामायण काल में मिलते हैं। भारतवर्ष में शास्त्रीय अथवा लौकिक नृत्यों का उद्भव किसी देवता विशेष की पूजा एवं अर्चना से हुआ माना जाता है। इस बात का कुछ संकेत उत्तरकाण्ड से भी प्राप्त हो जाता है, जहाँ रावण नृत्य एवं गायन के साथ भगवान की आराधना करता है। रामायण में नृत्य के तीन प्रकारों का उल्लेख मिलता है –– नृत्य, नृत एवं लास्य। नृत्य के अन्तर्गत् आंगिक अभिनय द्वारा भाव प्रदर्शन, नृत में ताल, लय एवं अंग विक्षेप पर ज़ोर दिया जाता था तथा लास्य एक प्रकार का सुकुमार नृत्य था जिसमें गीत वाद्य के साथ नृत व नृत्य दोनों का समावेश होता था।

नृत्य का सम्बन्ध अप्सराओं के साथ उसी प्रकार होता था जैसे गीत के साथ गंधर्वों का। उस समय समाज में नर्तक एवं नर्तकियों का एक ऐसा वर्ग भी था जिनकी जिविका का साधन ही नृत्य एवं नाटयादि था। इस काल में कुशल गायक, वादक एवं नर्तकों को राजमहल में भी स्थान दिया जाता था। इस प्रकार रामायण में संगीत के तीनों तत्वों को भली–भान्ती देखा जा सकता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 रामायणकाल के संगीत के स्वर, मूर्छना और जाति के विषय में बताइए।

प्र0.2 रामायणकाल के वादन संगीत का वर्णन कीजिए।

5.6 रामायण काल में रावण एक महान संगीतज्ञ :–

शिक्षा एवं विद्वता की दृष्टि से रावण को सर्वगुण सम्पन्न माना जाता है। इसकी पुष्टि प्राचीन साहित्य एवं जनश्रुति दोनों से ही होती है। परम्परानुसार रावण वेदों का विद्वान था। कहा जाता है कि स्वर सहित वेद पाठ करने की प्रणाली का अविष्कार सबसे पहले रावण ने ही किया था। सामवेद के स्त्रोतों से उसने नर्मदा के तीर पर भगवान शंकर की आराधना की थी। कहते हैं कि वह स्वस्थ संगीत का अभ्यास किया करता था। रावण संगीत का एक बड़ा प्रेमी और मर्मज्ञ था। इतना ही नही रावण की पत्नी मन्दोदरी भी संगीत की बड़ी ज्ञाता थी। यह भी कहा जाता है कि रावण की अन्य रानियां भी सभी प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाने में निपुण थीं। कहते है रावण के महल में उस समय के संगीत के हर प्रकार के वाद्य विद्यमान थे। कहा जाता है कि रावण ने एक संगीत ग्रंथ की भी रचना की थी जो 'रावणीयम्' नाम से रचा गया था।

इस काल में संगीत केवल कुछ लोगों तक ही सीमित नहीं था अपितु जन–जन तक संगीत की पहुंच थी। बाल्मीकि आश्रम में रह रहे लव–कुश को भी संगीत की शिक्षा दी गई थी। वे दोनों तीर चलाने के साथ–साथ संगीत में भी प्रवीण थे। कहा जाता है कि रामायण काल में राजा से लेकर रंक तक सभी संगीत से किसी न किसी रूप में जुड़े थे। अतः यह कहा जा सकता है कि रामायण काल में संगीत को आध्यात्मिक और सामाजिक दोनो प्रकार से अपनाया गया था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 रामायणकाल में रावण का संगीतज्ञ के रूप में वर्णन कीजिए।

5.7 सारांश :–

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल, रामायण काल, में संगीत व्यवस्था पुरातन परम्परओं पर आधारित रही। इन कालों में संगीत राजा से लेकर जनसाधारण में भी विशेष रूचि दिखाता है। इन कालो में इतना अवश्य है कि समाज में मानव कल्याण हेतु ईश्वर उपासना स्वर–लय बद्ध प्रणाली से की जाती थी। इन सभी कालों में संगीत को आराधना और भक्ति का साधन माना जाता था। वीणा इन कालों का सबसे प्रमुख वाद्य रहा है। इन सभी कालों में संगीत सदैव विकास के मार्ग पर अग्रसर रहा।

5.8 शब्दकोष :–

1 ध्येय – उदेश्य

2 स्वर मण्डल – स्वर समूह

3 कण्ठस्थ – याद करना

4 विवेचन – आलोचनात्मक अध्ययन

5 कृति – रचना

6 प्रकाण्ड – विशाल

7 आभा – प्रकाश

8 प्रस्फुटित – प्रकट होना, खिला हुआ या विकसित

9 विभोर – मग्न

10 पोषक – पोषण

11 शुद्ध गायन – शास्त्रीय गायन

12 अंग विक्षेप – हाव–भाव दिखाना

13 पुरातन –प्राचीन

5.9 स्वयं निरीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 वैदिककाल के संगीत का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उ0. वैदिक संगीत इस काल की बड़ी विशेषता रही है। इस काल के लोग आध्यात्म की ओर बहुत झुके हुए थे और ये अनुभव करते थे कि ईश्वर की सत्ता से, संगीत अलग नही है। वैदिक काल में हिन्दु धर्म के चारों वेदों की रचना हुई। वैदिक काल में संगीत का बहुत प्रचार था , इसका प्रमाण हमें वेदों से भली प्रकार मिलता है। वैदिक युग का आरम्भ आर्यों के आगमन से माना जाता है। भारतीय संस्कृति के आधार वेद माने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान भी वेदों को संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने चारों वेदों के चार उपवेदों का इस प्रकार विवेचन किया है –– ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्व वेद और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र। सामवेद के रूप में गान्धर्व वेद की स्थापना हुई। इसी आधार पर नाटयशास्त्र और बृहदेशी आदि ग्रंथों की रचना हुई।

वैदिक काल में जिनमें से 'सामवेद' पूर्णतया संगीतमय है। समस्त संगीत शास्त्र की उत्पत्ति 'सामवेद' से हुई है। ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋचा कहते थे। ये ऋचाएं जब स्वर और ताल सहित गाई जाती थीं तब वे साम

कहलाती थीं। साम शब्द सा+आम अर्थात् सा – ऋचा और आम – आलाप से बना है जिससे तात्पर्य है 'आलाप से युक्त गायन'। इन ऋचाओं के संगीतमय परायण से ही सामगान का प्रथम विकास ऋषियों द्वारा किया गया। कहा जाता है कि सामवेद की रचना ही ऋषियों ने संगीत के उदेश्य से ही की। सामवेद संगीत शास्त्र का उद्गम ग्रन्थ माना जाता है। इसके मंत्रों का पाठ आज भी किया जाता है। सामवेद के स्वरों से ही आधुनिक संगीत शास्त्र के स्वरों की उत्पत्ति हुई है। सामगायन में पहले तीन स्वर प्रयुक्त होते थे – उदात्त, उनुदात्त और स्वरित। उदात्त का अर्थ था ऊँचा और अनुदात्त का अर्थ था नीचा और स्वरित को उदात्त और अनुदात्त के बीच का स्वर मानते थे। धीरे–धीरे स्वरों की संख्या तीन से चार, चार से पाँच और पाँच से सात हो गई। वैदिक काल में ही सात स्वर विकसित हो गए थे जो कि इस प्रकार थे – क्रुष्ठा, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ या अतिस्वर। वैदिक काल में ग्रामों का जन्म भी हो चुका था। 'नारदीय शिक्षा' में लिखा है कि सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएं और उन्नचास तानें मिलकर सामवेद के स्वर मण्डल का निर्माण करते थे।

इस काल में विभिन्न प्रकार के वाद्य भी प्रचार में आ गए थे। इस काल में गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाएं विकसित हुई। संगीतज्ञों को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। सभी परिवारों में सुबह–शाम ईश्वर की आराधना गा–बजा कर की जाती थी। उनका गायन, वादन एवं ताल तथा स्वर में बंधा होता था। सार्वजनिक रूप में भी संगीत प्रदर्शन हुआ करता था। इस युग में शास्त्रीय संगीत के साथ–साथ लोक संगीत की धारा भी प्रचलित हो गई थी। लोक संगीत की रचना प्रायः ब्राह्मण लोग ही करते थे। इन लोगों का विश्वास था कि कला के द्वारा समाज का चरित्र उज्जवल बनाया जा सकता है।

वैदिक काल में तत् वाद्य, अवनद्ध वाद्य, घन वाद्य तथा सुषिर वाद्य आदि प्रचलित थे। वैदिक संगीत में वीणा वाद्य का प्रयोग विशेष लोकप्रिय रहा है। इसका गायन–वादन से मुख्य सम्बन्ध था। इस वाद्य को नारियां अधिक बजाया करती थीं और साथ ही वे कंठ संगीत में भी दिलचस्पी लेती थीं। वैदिक संगीत में वीणा का अत्यधिक प्रयोग यह सिद्ध करता है कि संगीत ने उस समय बड़ी उन्नति कर ली थी।

वैदिक काल में नृत्य कला भी उन्नति पर थी। स्त्री और पुरूष के सामूहिक नृत्य भी हुआ करते थे। सार्वजनिक आयोजनों में नर्तकियाँ खुलकर भाग लिया करतीं थीं क्योंकि उस समय समाज में गायक, वादकों एवं नर्तकों को उच्च स्थान प्राप्त था। संगीत समारोह में सभी वर्गों के पुरूष और स्त्रियाँ कला प्रदर्शित करती थीं और पुरूष वर्ग कंठ संगीत का सुन्दर प्रर्दशन किया करते थे। वैदिक युग में धार्मिक मण्डलियों ने संगीत के आध्यात्मिक रूप का विकास किया। इस युग में संगीत और धर्म एक हो गए थे। दोनों के मिलन से ही वैदिक संगीत का जन्म हुआ। उस समय कोई भी धार्मिक संस्कार संगीत के बिना पूर्ण नहीं होता था। ये विश्वास किया जाता था कि ईश्वर की सत्ता संगीत से अलग नहीं है। इस युग में आर्चिका, गायिका और सामिका तीन प्रकार की गायन शैलियाँ थीं। आर्चिका में एक ही स्वर पर समस्त गायन होता था। इसका प्रयोग निजी प्रार्थना तथा श्लोकों को

कण्ठस्थ करने में होता था। गायिका शैली में एक स्वर और मिला कर दो स्वरों में समस्त गायन होता था। सामिक में एक स्वर ऊपर का और एक स्वर नीचे का और सम्मिलित करके गायन होता था। जब कभी नियमानुसार जनता के समक्ष गायन होता था तब इसी पद्धति से किया जाता था।

प्र0.2 वैदिककाल के तंत्री वाद्यों के विषय में बताइए।

उ0. वैदिक काल में तंत्री वाद्य :–

वीणा इस वर्ग का प्रमुख वाद्य है। इसके अनेक उल्लेख वैदिक साहित्य में यत्र–तत्र मिलते हैं। सम्भवतः वीणा वाद्य इस काल के लोकप्रिय तथा सर्वाधिक प्रचलित वाद्यों में से एक थी। अनेक प्रकार की वीणाएं इस काल में प्रचलित रहीं जैसे –– बाज वीणा, कर्करी वीणा, काण्ड वीणा, अपघाटिला वीणा, गोधा वीणा आदि। 'बाण' नामक तंत्री वाद्य वैदिक काल का एक लोकप्रिय वाद्य माना जाता था। इस वाद्य की विशेषता इसमें लगे 100 तारों के कारण थी जिसकी तुलना उस समय पुरूष की 100 वर्ष की आयु से की जाती थी। महाव्रत यज्ञ के अवसर पर इस वीणा का वादन इसके धार्मिक महत्व को भी दर्शाता है। इस शत तंत्री बांण वीणा के अवशेष आज भी सौ तारों वाले प्रचलित कश्मीरी वाद्य संतूर, दक्षिण वाद्य याल एवं कात्यायनी वीणा के रूप में देख सकते हैं। कर्करी वीणा एवं कण्ड वीणा आदि प्रकार सम्भवतः तंत्री संख्या, आकार, वादन–विधि, आदि भेदों के आधार पर बनाए जाते होंगे। अपघटिला वीणा एक ऐसा प्रकार है जिसके विषय में विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह मुख से बजाई जाने वाली वीणा रही है तथा इसका प्रयोग यज्ञ के अवसर पर गायकों की पत्नियां भी करती थीं।

प्र0.3 रामायणकाल के संगीत का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उ0. रामायण काल का संगीत :–

रामायण भारतीय साहित्य का प्रथम महाकाव्य है। यह विश्व साहित्य के प्राचीनतम् महाकाव्यों की तुलना में भाषा, भाव, छन्द, रचना–विधान एवं रस व्यंजन की दृष्टि से उत्कृष्ट कृति प्रमाणित हुई है। इस ग्रंथ में प्रमुख चरित्र नायकों के साथ–साथ वैदिक कालीन चित्रमय संगीत, संगीतानुष्ठान एवं अनेकानेक वाद्ययन्त्रों का उल्लेख मिलता है। महर्षि बाल्मीकि ने लगभग 500 ई0 पू0 इस ग्रंथ की रचना की थी। कहा जाता है कि वे स्वयं वैदिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के संगीत के प्रकाण्ड पंडित थे। रामायण काल में सम्पूर्ण समाज पर संगीत की पावन एवं दिव्य आभा छिटक रही थी। इस काल में संगीत का आत्म सौंदर्य विकसित होने लगा था।

वैदिक काल की तरह इस काल में भी हर घर में प्रातःकाल होते ही ईश्वर आराधना की संगीतमय स्तुति प्रस्फुटित हो उठती थी। इस संगीतमयी प्रार्थना में घर के सभी सदस्य भाग लेते थे। गरीब–अमीर सभी ईश्वर

आराधना किया करते थे। सार्वजनिक रूप से समाज में संगीत के आयोजन हुआ करते थे। इन आयोजनों में सर्वसाधारण भी विशेष रूचि लिया करते थे। रामायण काल का यह वर्णन भी हमें मिलता है कि श्री रामचन्द्र जी के विवाह उत्सव पर संगीत का आयोजन भी किया गया था। महिलाओं ने मंगल गीत गाए थे। उस अवसर पर वीणा तथा मृदंग आदि वाद्यों का वादन किया गया था। महिलाएं आनन्द विभोर होकर नृत्य में झूम उठी थीं। इसी प्रकार जब भगवान राम 14 वर्ष का वनवास काट कर अयोध्या वापिस लौटे थे तो उस समय भी अयोध्या नगरी को खूब सजाया गया था। नगर में स्थान–स्थान पर दीप जलाए गए थे और गायन–वादन का एक विशाल उत्सव मनाया गया था।

रामायण की रचना उत्तर वैदिककाल के लिए असाधारण, अमूल्य एवं महत्वपूर्ण घटना है। इस काल के संगीत में पावनता के दर्शन होते हैं। इस काल में राजा और प्रजा दोनों ही संगीत के परम पोषक थे। घर–घर में धार्मिक संगीत का प्रचार था। तत्कालीन ऋषि–मुनि संगीत की दैवी शक्ति से भली–भान्ति परिचित थे और वे अपनी रचनाओं द्वारा अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दिया करते थे और शिष्य समाज में जा कर उसका गायन किया करते थे। जिसका एक उदाहरण बाल्मीकि के शिष्य लव–कुश की रामायण शिक्षा तथा रामायण गान से स्पष्ट हो जाता है।

प्र0.4 रामायणकाल के स्वर, मूर्छना एवं जाति के विषय में बताइए।

उ0. **स्वर :–** संगीत में स्वर उसका प्रथम मूलभूत तत्व है। संगीत का ग्रंथ न होने के कारण सप्त स्वरों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन जहां सप्त जातियों एवं मूर्च्छनाओं का उल्लेख आता है वहाँ सप्त स्वरों की सत्ता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

मूर्च्छना :– सप्त स्वरों को बारी–बारी से स्वरित या षड़ज मान कर आरोह–अवरोह सहित गायन–वादन करना मूर्च्छना कहलाता है। इसमें भिन्न–भिन्न स्वरान्तराल सहित स्वरावलियां प्राप्त होती हैं।

जाति :– जाति शब्द की भी विस्तृत व्याख्या सर्व प्रथम भरत के ग्रंथ में प्राप्त होती है। भरत ने कुल 18 जातियों का उल्लेख किया है जबकि रामायण में केवल सात शुद्ध जातियों का ही उल्लेख मिलता है।

प्र0.5 रामायणकाल के वादन संगीत का वर्णन कीजिए।

उ0. **वादन :–**

रामायण काल में चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है। तत् वाद्यों के अन्तर्गत् विपंची वीणा, वल्लकी वीणा आदि, अवनद्व वाद्यों के अन्तर्गत् सभी प्रकार के ढोल सम्बन्धी वाद्य जैसे –– दुंदभि, मृदंग, पटह, डिमडिम, पणव आदि, सुषिर वाद्य के अन्तर्गत् वेणु, शंख, तुरही, रणभेरी आदि तथा घन वाद्यों के अन्तर्गत् करताल, मंजीरा,

घण्टा, घण्टी, झांझ इत्यादि वाद्य प्रयोग किए जाते थे। इनमें से कुछ वाद्यों का प्रयोग संगीत कार्यक्रमों में तथा कुछ का प्रयोग युद्ध के अवसर पर किया जाता था। संगीत के अन्तर्गत् शास्त्रीय संगीत के प्रयोग का भी एक वर्णन रामायण काल में मिलता है। कहा जाता है कि जब सुग्रीव बहुत समय तक वापिस श्री राम से मिलने नहीं गए तब लक्ष्मण जी उससे मिलने और उसे याद दिलाने के लिए सुग्रीव के महल पहुंचे। जब उन्होंने सुग्रीव के अन्तःमहल में प्रवेश किया तो उन्होंने वहां सुग्रीव को वीणा वादन के साथ शुद्ध गायन सुनते देखा।

इस प्रकार रामायणकाल में वादन संगीत का बहुत प्रचार रहा।

प्र0.6 रामायणकाल के रावण का संगीतज्ञ के रूप में वर्णन कीजिए।

रामायण काल में रावण एक महान संगीतज्ञ :–

शिक्षा एवं विद्वता की दृष्टि से रावण को सर्वगुण सम्पन्न माना जाता है। इसकी पुष्टि प्राचीन साहित्य एवं जनश्रुति दोनों से ही होती है। परम्परानुसार रावण वेदों का विद्वान था। कहा जाता है कि स्वर सहित वेद पाठ करने की प्रणाली का अविष्कार सबसे पहले रावण ने ही किया था। सामवेद के स्त्रोतों से उसने नर्मदा के तीर पर भगवान शंकर की आराधना की थी। कहते हैं कि वह स्वस्थ संगीत का अभ्यास किया करता था। रावण संगीत का एक बड़ा प्रेमी और मर्मज्ञ था। इतना ही नही रावण की पत्नी मन्दोदरी भी संगीत की बड़ी ज्ञाता थी। यह भी कहा जाता है कि रावण की अन्य रानियां भी सभी प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाने में निपुण थीं। कहते है रावण के महल में उस समय के संगीत के हर प्रकार के वाद्य विद्यमान थे। कहा जाता है कि रावण ने एक संगीत ग्रंथ की भी रचना की थी जो 'रावणीयम्' नाम से रचा गया था।

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1 भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण) प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद 2014।

2 संगीत निबन्धावली, संकलन–डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, 1998, प्रकाशक–संगीत कार्यालय, हाथरस, इलाहाबाद।

3 संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

5.11 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 वैदिक काल में कितने प्रकार के वाद्य प्रचलित थे ? वर्णन कीजिए।

प्र0.2 रामायण काल के संगीत का वर्णन कीजिए।

LESSON – 6

Music of Mahabharata and Purana's.

महाभारत काल एवं पुराण काल का संगीत

STRUCTURE :

6.1 उदेश्य

6.2 भूमिका

6.3 महाभारत काल में संगीत

6.3.1 महाभारत काल में साम गायन एवं गाथा गायन

6.4 महाभारत काल में गायन, वादन एवं नृत्य

6.4.1 गायन

6.4.1.1 प्रमाण

6.4.1.2 लय

6.4.1.3 स्थान

6.4.1.4 आलाप

6.4.1.5 तान

6.4.1.6 सप्त स्वर

6.4.1.7 ताल

6.4.2 वादन

6.4.2.1 तत् वाद्य

6.4.2.2 अवनद वाद्य

6.4.2.3 सुषिर वाद्य

6.4.2.4 घन वाद्य

6.4.3 नृत्य

6.5 गुरू शिष्य परम्परा

6.5.1 राज्य एवं सामाजिक स्तर पर संगीत

6.6 पुराण काल में संगीत

6.7 सारांश

6.8 शब्दकोष

6.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

6.1 भूमिका :–

महाभारत के रचयिता महर्षि वेद व्यास थे। इस आध्यात्मिक ग्रंथ में लगभग एक लाख श्लोक हैं। इतिहासकारों के अनुसार इस ग्रंथ की रचना ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में हुई थी। इस ग्रंथ में राजनीति, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, कथा–साहित्य, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा सामाजिक–पारिवारिक अनुशासन का अदभुत समन्वय पाया जाता है। भारतीय समाज में इस ग्रंथ को वेद तुल्य ही माना जाता है।

6.2 उदेश्य :–

महाभारत काल और पुराण काल में संगीत की क्या दशा और दिशा थी, संगीत का कितना विकास इन कालों में हुआ और संगीत को किस दृष्टि से देखा जाता था, शास्त्र रूप में संगीत में कितना विकास हुआ था, यही जानना इस पाठ का उदेश्य है।

6.3 महाभारत काल में संगीत :–

महाभारत महाकाव्य यद्यपि संगीत से सम्बन्धित नही है तथापि तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक स्थिति से संगीत कला के अत्यन्त विकसित स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। रामायण काल के समान इस काल में भी साम, स्त्रोत, स्तुति तथा गाथा आदि में वैदिककालीन संगीत का ही परिपालन होता दिखाई देता है। महाभारत काल में भगवान श्री कृष्ण संगीत के महान पंडित के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने समकालीन समाज में राजनीति, धर्म और ज्ञान के साथ–साथ संगीत का भी प्रचार–प्रसार किया।

संगीत का मुख्य क्रीड़ा स्थल ब्रजभूमि थी। ब्रजलोक के कण–कण में श्री कृष्ण की बांसुरी की स्वर लहरी गुंजायमान रहती थी। उनके संगीत का सृष्टि में जड़–चेतन, पशु–पक्षी, नर–नारी आदि सभी पर अमिट प्रभाव पड़ता था और वे सांसारिक सुख–दुःख से विरक्त होकर नैसर्गिक आनन्द में मग्न हो जाते थे।

6.3.1 महाभारत काल में साम गायन एवं गाथा गायन :–

महाभारत में साम गायन एवं गाथा गायन का विशेष उल्लेख मिलता है। ऋषि–मुनियों के आश्रम सदैव साम एवं अन्य वेद मंत्रों के गायन से प्रतिध्वनित रहते थे। ऋषि–मुनि, पुरोहित, गन्धर्व तथा द्विज सभी साम गायन करते थे। इसके अतिरिक्त विशिष्ट अवसरों पर धार्मिक संगीत का भी प्रयोग होता था। साम गायन के प्रकारों में जयेष्ठ, भारूण्ड, बृहत्, गीत आदि के उल्लेख मिलते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 महाभारत काल के संगीत पर प्रकाश डालिए।

प्र0.2 महाभारत काल के साम गायन तथा गाथा गायन पर प्रकाश डालिए।

6.4 महाभारत काल में गायन, वादन एवं नृत्य :–

6.4.1 गायन :–

महाभारतकाल में शास्त्रीय शब्दों का उल्लेख देखने को मिलता है जैसे –– प्रमाण, लय, स्थान, मूर्च्छना, तान, आलाप, ताल, सप्त स्वरों के नाम इत्यादि।

6.4.1.1 प्रमाण :–

यह संगीत की एक पारिभाषिक संज्ञा है। इसका सम्बन्ध लय से होता है। द्रुत, मध्य एवं विलम्बित तीन प्रकार की लय को प्रमाण कहा जा सकता है।

6.4.1.2 लय :–

काल की नियमित गति संगीत में लय कहलाती है। लय को हाथ से तथा वाद्यों से भी दिखाया जा सकता है।

6.4.1.3 स्थान :–

यह संगीत में सप्तक का द्योतक है। मंद्र, मध्य तथा तार ये तीन सप्तक ही स्थान भी कहे जाते हैं।

6.4.1.4 आलाप :–

यह भी शास्त्रीय संगीत का एक तत्व है।

6.4.1.5 तान :–

यह भी गायन में प्रयुक्त होने वाला प्रमुख तत्व है। जिस प्रकार कुछ स्वरों के माध्यम से विलम्बित गति में गायन होता है, वह आलाप है। उसी प्रकार स्वरों के द्रुतगति एवं क्रमानुसार चढ़ाव–उतार से गायन करना तान कहलाता है।

6.4.1.6 सप्त स्वर :–

इनके नाम महाभारत में स्पष्ट रूप से षड़ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद रूप में प्राप्त होते हैं।

6.4.1.7 ताल :–

ताल भी संगीत की एक पारिभाषिक संज्ञा है। लय से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। काल की नियमित गति जो कुछ नियमों से बद्ध होती है, वह ताल कहलाती है। ताल हाथ से और वाद्यों के माध्यम से भी दिया जाता था। इसका गायन, वादन एवं नृत्य तीनों में समान स्थान है।

6.4.2 वादन :–

वादन के अन्तर्गत् वाद्य सम्बन्धी विवरण आता है। महाभारत काल में भी रामायण काल की तरह चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है।

6.4.2.1 तत् वाद्य :– इसके अन्तर्गत् वीणा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। महाभारत काल में द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर वेणु आदि वाद्यों के साथ वीणा की भी ध्वनि गूंज रही थी। यज्ञ स्थल पर भी नृत्य की संगत के साथ वीणा वादन का उल्लेख आता है।

6.4.2.2 अवनद वाद्य :– महाभारत में इस वर्ग के निम्न वाद्य का उल्लेख मिलता है –– दुंदभि, मृदंग, मुरज, पणव, पुष्कर, पटह, आडम्बर, डिमडिम, भेरी आदि। इन वाद्यों का प्रयोग युद्ध, घोषणा के अवसर पर बहुतायत से होता था। इसके अतिरिक्त संगीत में तो इनका प्रयोग होता ही था।

6.4.2.3 सुषिर वाद्य :– इसके अन्तर्गत् वेणु, गोमुख, शंख, भेरी, तुरही इत्यादि का उल्लेख बहुतायत से मिलता है।

6.4.2.4 घन वाद्य :– घन वाद्यों में झर्झर, करताल, मंजीरा, झांझ, घंटी, घंटा इत्यादि। इन वाद्यों का उपयोग लय के लिए किया जाता था। इस काल में भी हाथ से लय देने वालों का एक वर्ग था।

6.4.3 नृत्य :–

नृत्य का उल्लेख महाभारत काल में अनेक स्थलों पर आया है। इस काल में रास लीला नृत्य का भी निर्माण हो गया था साथ ही अन्य प्रकार के नृत्यों का भी उद्‌गम हुआ था। इस काल में यह भी वर्णन मिलता है कि गोपियां नाना प्रकार के नृत्य करके श्री कृष्ण को रिझाती थीं। इस काल में नृत्य कई अवसरों पर होता था। महाभारत काल में अर्जुन के जन्म के अवसर पर गंधर्वों के गायन–वादन के साथ–साथ रंभा, मनोरमा, सुप्रिया जैसी सुन्दर अप्सराओं आदि के नृत्य का भी उल्लेख मिलता है। वहीं द्रौपदी की स्वयंवर सभा भी नट नर्तकों से सुशोभित थी। उस समय चित्रसेन नामक गंधर्व नृत्य एवं गायन के आचार्य थे जिनसे अर्जुन ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। अर्जुन को भी महाभारत काल का एक महान संगीतज्ञ माना जाता है। यह भी वर्णन आता है कि अर्जुन ने आगे चल कर अज्ञातवास के समय राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत और नृत्य की शिक्षा दी थी। राजाओं के शिविरों में भी नर्तकों की उपस्थिति आवश्यक होती थी। इसके अतिरिक्त ब्रह्मयज्ञ के अवसर पर भीर नृत्य हुआ करते थे।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 महाभारत काल के गायन संगीत का उल्लेख कीजिए।

प्र0.2 महाभारत काल के समय में नृत्य पर प्रकाश डालिए

6.5 गुरू शिष्य परम्परा :–

यह परम्परा वैदिककाल से लेकर हर काल में विद्यमान रही है। महाभारत काल में भी गुरू शिष्य परम्परा विद्यमान रही। कुशल नृत्य गीत विशारद, गंधर्व लोग होते थे। इनके द्वारा संगीत की शिक्षा प्रसारित की जाती थी। अर्जुन ने इन्हीं संगीताचार्यों से संगीत की शिक्षा ली थी। इस युग में **फिर यही शिक्षा अर्जुन ने उत्तरा को दी । गुरु का पद सम्माननीय** माना जाता था, **जैसा कि अर्जुन के कथन से प्रतीत होता है**, **जब वह विराट से कहता है कि उत्तरा से उसका सम्बन्ध पितातुल्य है** वह किसी भी प्रकार से उससे **विवाह नहीं करेगा। उक्त उल्लेख गुरु शिष्य परम्परा तथा उनके मध्य स**म्बन्ध का द्योतक है।

6.5.1 राज्य व सामाजिक स्तर पर संगीत :–

संगीत राजाओं के जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया था। वे संगीत की ध्वनी से ही निद्रित एवं जागरित होते थे। राजा जब कभी युद्ध अथवा शुभ कार्य के लिए प्रस्थान करता था अथवा विपक्षी योद्धा का वध करता था, तब संगीतज्ञ सदा वादन करते हुए साथ चलता था। जब संगीत ध्वनी नहीं सुनाई पड़ती थी तो सर्वदा अशुभ माना जाता था। यज्ञ जैसे धार्मिक अवसरों से लेकर विवाह, जन्म जैसे सामाजिक अवसरों पर भी संगीत आयोजन किया जाता था।

संगीत को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। इसका सभी वर्गो में प्रचार था। ब्राह्मण, क्षत्रीय, पुण्य करने वाला व्यक्ति, देवता आदि सभी संगीत से घिरे रहते थे। किन्तु कुछ उल्लेख इस काल में ऐसे भी आते हैं जिसमें संगीत की अवहेलना की जाती थी। जैसे संगीत का व्यवसाय करने वालों को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं दी जाती थी।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 महाभारत काल की गुरू–शिष्य परम्परा पर प्रकाश डालिए।

6.6 पुराण काल में संगीत :–

भारतीय संगीत में पुराण साहित्य का विशिष्ट स्थान है। वैदिक काल के बाद हमें संगीत के विषय में विस्तार से पौराणिक काल में भी पता चलता है। इस युग के संगीत की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें पुराणों

एवं उपनिषदों का अध्ययन करना पड़ता है। ये पुराण हमारे साहित्यिक ग्रन्थ होते हुए भी हमारे देश के महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ माने जाते हैं।

हमारी संस्कृति में 18 प्रकार के पुराण बताए गए हैं। इन पुराणों की रचना महर्षि वेद व्यास अर्थात् कृष्ण द्वैपायन द्वारा की गई। इन 18 पुराणों के नाम इस प्रकार हैं –– ब्रह्म पुराण, पदम पुराण, वैष्णव पुराण, शैव पुराण, भागवत पुराण, नारदीय पुराण, मार्कण्डेय पुराण, आग्नेय पुराण, हरिवंशपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मतस्य पुराण, गरूड़ पुराण तथा वायु पुराण। इन पुराणों के अतिरिक्त 18 उप पुराण भी बताए गए हैं। इन पुराणों में उस समय के संगीत का वर्णन प्राप्त होता है। संगीत के इतिहास की दृष्टि से संगीत की सामग्री जिन पुराणों में उपलब्ध होती है वे हैं –– हरिवंश पुराण, मार्कण्डेय पुराण, विष्णु पुराण एवं वायु पुराण।

इन पुराणों में कथा तथा कथा वाचक नामक विशिष्ट वर्ग का उल्लेख मिलता है जिनका कार्य इन पुराण कथाओं का प्रवचन करना होता था। इस प्रकार की गाथाओं का प्रवचन करने वाले व्यक्ति पौराणिक कहलाते थे। पुराण काल में सामगान का प्रचलन था। इनका गायन एवं विकास करना गन्धर्वों का कार्य माना जाता था। इस काल में गन्धर्वों का स्थान सदैव स्तुति गायक के रूप में रहा है।

इस काल में यज्ञों आदि पर विशेष ध्यान होता था। इस काल में यज्ञ के अवसर पर लोगों के मनोरंजन के लिए गाथा नामक गीतों का गायन तथा नाटय का प्रदर्शन किया जाता था। ये गाथा गीत परम्परागत गीत होते थे। इनका गायन यज्ञ के अतिरिक्त कुछ विशेष समारोहों पर भी किया जाता था। इनका गायन कुशल गायकों द्वारा किया जाता था।

हरिवंश पुराण में गांधर्व का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। गान्धर्व के अन्तर्गत् गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश माना गया है। संगीत से सम्बन्धित लोग गन्धर्व तथा किन्नर कहलाते थे। उस समय नारद तथा तुमरू ऋषि का देवगन्धर्वों में श्रेष्ठ स्थान था। हरिवंश पुराण के नारद संगीत की वैदिक तथा गान्धर्व दोनों प्रणालियों के ज्ञाता थे। वे चारों वेदों के ज्ञाता, गायक तथा गान्धर्वकोविद भी माने जाते थे। गान्धर्व संगीत देशी भाषाओं के माध्यम से जन–जन में प्रचलित था। स्वर, ग्राम, स्थान, मूच्छर्ना, ग्रामराग आदि अंगों का प्रयोग गान्धर्व में किया जाता था। इस युग में षड़ज, मध्यम और गान्धार ग्रामों का भी प्रचलन था।

संगीत के अन्तर्गत् गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का प्रचार था। इस युग में लोक नृत्यों का भी अधिक प्रचार रहा। लोक उत्सवों में पुरूष व स्त्री दोनों समान रूप से गीत एवं नृत्य में भाग लिया करते थे। लोक संगीत के अन्तर्गत् हल्लीसक एवं छालिक्य नामक गान्धर्व का उल्लेख मिलता है। हल्लीसक गान–वादन के साथ एक प्रकार का लोक नृत्य था। कहा जाता है कि सही रास नृत्य का प्रारम्भिक रूप भी था। छालिक्य एक समूह गीत

होता था, जिसके अन्तर्गत् विभिन्न वाद्यों का वादन एवं नृत्य किया जाता था। इस गीत को विभिन्न ग्रामरागों के अन्तर्गत् विभिन्न मूर्च्छनाओं के साथ गाया जाता था। यह गीत का एक कठिन प्रकार माना जाता था। इस काल में मूर्च्छना और जाति गायन के साथ छः ग्राम रागों का भी वर्णन मिलता है। इस पुराण काल में वाद्यों के चारों प्रकार प्रचलित थे। हरिवंश पुराणकाल में वीणा, महती वीणा और अन्य प्रकार की विभिन्न वीणाओं के साथ–साथ पणव, दुर्दर, वेणु, शंख, मृदंग, भेरी, मुरज इत्यादि का उल्लेख मिलता है।

हरिवंश पुराण में उत्सवों का आयोजन भी किया जाता था। उत्सवों के अन्तर्गत् संगीत के सामूहिक पक्ष का भी वर्णन मिलता है। इन उत्सवों में पुरूष तथा स्त्रियां दोनों निरपेक्ष भाव से भाग लिया करते थे। इस काल में गीत तथा नृत्य के साथ हाथ से ताल देने की प्रथा का भी प्रचलन था। इस काल में गायन–वादन का जितना प्रचलन था उतना ही नृत्य का भी था। नृत्य कला के लिए रूप तथा गुण दोनों का होना आवश्यक माना जाता था।

इस काल में साम तथा गाथा आदि गीतों का गायन उच्च श्रेणी का माना जाता था। गन्धर्वों की गणना दिव्य गायकों में की जाती थी। विश्वावसु, नारद तथा तुमरू आदि को देवगन्धर्वों में बहुत मान प्राप्त था। इस काल में वाद्यों के लिए 'सूर्य' संज्ञा दी गई थी। सूर्यों का प्रयोग नाट्य क्रीड़ा, युद्ध तथा लोक उत्सवों के अवसर पर किया जाता था। हरिवंश पुराणकाल में कई प्रकार की विणाओं, तुम्बी वीणा, मुरज, मृदंग, भेरी, वेणु, गोमुख, नन्दि तथा शंख जैसे वाद्यों का अधिक प्रचलन था।

विद्वानों के अनुसार वायु पुराण भारत के प्राचीनतम् पुराणों में से एक है। विद्वानों का कहना है कि वायु पुराण के 86 व 87वें अध्याय में संगीत का वर्णन मिलता है। इसमें वर्ण, अलंकार तथा गीतों का वर्णन मिलता है। जिसमें विभिन्न अलंकारों का वर्णन मिलता है। इस काल में पद किसी गीत के आवश्यक अंग हुआ करते थे और अलंकारों का प्रयोग इन पदों की शोभा को बढ़ाने के लिए किया जाता था। वायु पुराण में सामगान की विशिष्ट महिमा का वर्णन किया गया है। इस पुराण काल में स्वर मण्डल का उल्लेख मिलता है। जिसके अन्तर्गत् सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाओं एवं 49 तानों के समुदाय को स्वर मण्डल की संज्ञा दी गई है। इस पुराण काल में तानों का विभाजन तीन ग्रामों में इस प्रकार किया गया है।

षड़ज ग्राम में 14 तानें

मध्यम ग्राम में 20 तानें

गान्धार ग्राम में 15 तानें

बताई गई हैं। इन तानों का प्रयोग यज्ञ आदि के अवसर पर किया जाता था। वायु पुराण में 'गीतक' का उल्लेख भी मिलता है। गीतक लघु, गुरू आदि अक्षरों और विभिन्न तालों के आधार पर रचित गीत होते हैं। ये गीत विभिन्न प्रकार के होते थे जैसे –– मंद्रक, उपरान्तक, उल्लोण्यक, प्रकारी रोविन्द अथवा रोविन्द, औवेजक और उत्तर जैसे सात प्रकार के गीतों का वर्णन मिलता है।

वायु पुराण के अनुसार ऋग्वेद को जनने वाला समस्त वेदों को जान लेने वाला होता था। इस पुराण में शिव की संगीत प्रियता का उल्लेख भी मिलता है। इस काल में शिव की आराधना करने के लिए वैदिक तथा लौकिक गीतियों का प्रयोग किया जाता था। यह भी कहा जाता है कि सामगान का प्रयोग शिव को प्रसन्न करने के लिए भी किया जाता था। पुराण काल में यह भी वर्णन मिलता है कि देवों के देव महादेव स्वयं भी गीत, वाद्य तथा नृत्य में तत्पर रहते थे। इसलिए शिव की आराधना एवं भक्ति के लिए भक्तगण उन्हें संगीत का प्रसाद अर्पित करते थे। कहा जाता है कि पुराण काल में शिव की उपासना के लिए शंख, पटह, झर्झर, भेरी, डमरू, डिमडिम, गोमुख आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता था तथा साथ ही गीत एवं लास्य नृत्य का भी प्रयोग किया जाता था।

मारकण्डेय पुराण में वीणा, वेणु तथा पुष्कर वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान था। इनका वादन लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों कार्यों के लिए किया जाता था। इसके अनतर्गत् संगीत की दोनों प्रणालियों साम तथा गन्धर्व का पूर्ण उल्लेख मिलता है। इस पुराण काल में सप्त स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, राग, सात गीतकों, तीन लय – विलम्बित, मध्य तथा द्रुत, जाति गान आदि का विवरण 23 वें प्रकरण में किया गया है।

इस प्रकार पुराण काल में संगीत का बहुत प्रचार–प्रसार था और संगीत ईश्वर आराधना के साथ–साथ मनोरंजन के लिए भी प्रयोग किया जाता था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 पुराणों के विषय में संक्षेप में बताइए।

प्र0.2 वायु पुराण और मारकण्डेय पुराण पर प्रकाश डालिए।

6.7 सारांश :–

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल तथा पुराणकाल में संगीत व्यवस्था पुरातन परम्परओं पर आधारित रही। इन कालों में संगीत राजा से लेकर

जनसाधारण में भी विशेष रूचि दिखाता है। इन कालो में इतना अवश्य है कि समाज में मानव कल्याण हेतु ईश्वर उपासना स्वर–लय बद्ध प्रणाली से की जाती थी। इन सभी कालों में संगीत को आराधना और भक्ति का साधन माना जाता था। वीणा इन कालों का सबसे प्रमुख वाद्य रहा है। इन सभी कालों में संगीत सदैव विकास के मार्ग पर अग्रसर रहा।

6.8 शब्द कोष :–

1 समन्वय – संयोग या नियमित क्रम

2 विरक्त – लोभ–मोह से दूर रहना

3 निद्रित – नींद

4 पारमार्थिक – परमार्थ या दूसरे की भलाई

5 हेय – तुच्छ

6 गान्धर्व कोविद – संगीत का ज्ञाता

7 तत्तपर – तैयार

6.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 महाभारत काल के संगीत पर प्रकाश डालिए।

उ0. महाभारत महाकाव्य यद्यपि संगीत से सम्बन्धित नही है तथापि तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक स्थिति से संगीत कला के अत्यन्त विकसित स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। रामायण काल के समान इस काल में भी साम, स्त्रोत, स्तुति तथा गाथा आदि में वैदिककालीन संगीत का ही परिपालन होता दिखाई देता है। महाभारत काल में भगवान श्री कृष्ण संगीत के महान पंडित के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने समकालीन समाज में राजनीति, धर्म और ज्ञान के साथ–साथ संगीत का भी प्रचार–प्रसार किया।

संगीत का मुख्य क्रीड़ा स्थल ब्रजभूमि थी। ब्रजलोक के कण–कण में श्री कृष्ण की बांसुरी की स्वर लहरी गुंजायमान रहती थी। उनके संगीत का सृष्टि में जड़–चेतन, पशु–पक्षी, नर–नारी आदि सभी पर अमिट प्रभाव पड़ता था और वे सांसारिक सुख–दुःख से विरक्त होकर नैसर्गिक आनन्द में मग्न हो जाते थे।

प्र0.2 महाभारत काल के साम गायन और गाथा गायन पर प्रकाश डालिए।

उ0. **महाभारत काल में साम गायन एवं गाथा गायन :–**

महाभारत में साम गायन एवं गाथा गायन का विशेष उल्लेख मिलता है। ऋषि–मुनियों के आश्रम सदैव साम एवं अन्य वेद मंत्रों के गायन से प्रतिध्वनित रहते थे। ऋषि–मुनि, पुरोहित, गन्धर्व तथा द्विज सभी साम गायन करते थे। इसके अतिरिक्त विशिष्ट अवसरों पर धार्मिक संगीत का भी प्रयोग होता था। साम गायन के प्रकारों में जयेष्ठ, भारूण्ड, बृहत्, गीत आदि के उल्लेख मिलते हैं।

प्र0.3 महाभारत काल के गायन संगीत का उल्लेख कीजिए।

उ0. महाभारत काल में गायन :–

1 गायन :– महाभारतकाल में शास्त्रीय शब्दों का उल्लेख देखने को मिलता है जैसे –– प्रमाण, लय, स्थान, मूर्च्छना, तान, आलाप, ताल, सप्त स्वरों के नाम इत्यादि।

प्रमाण :– यह संगीत की एक पारिभाषिक संज्ञा है। इसका सम्बन्ध लय से होता है। द्रुत, मध्य एवं विलम्बित तीन प्रकार की लय को प्रमाण कहा जा सकता है।

लय :– काल की नियमित गति संगीत में लय कहलाती है। लय को हाथ से तथा वाद्यों से भी दिखाया जा सकता है।

स्थान :– यह संगीत में सप्तक का द्योतक है। मंद्र, मध्य तथा तार ये तीन सप्तक ही स्थान भी कहे जाते हैं।

आलाप :– यह भी शास्त्रीय संगीत का एक तत्व है।

तान :– यह भी गायन में प्रयुक्त होने वाला प्रमुख तत्व है। जिस प्रकार कुछ स्वरों के माध्यम से विलम्बित गति में गायन होता है, वह आलाप है। उसी प्रकार स्वरों के द्रुतगति एवं क्रमानुसार चढ़ाव–उतार से गायन करना तान कहलाता है।

सप्त स्वर :– इनके नाम महाभारत में स्पष्ट रूप से षड़ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद रूप में प्राप्त होते हैं।

ताल :— ताल भी संगीत की एक पारिभाषिक संज्ञा है। लय से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। काल की नियमित गति जो कुछ नियमों से बद्ध होती है, वह ताल कहलाती है। ताल हाथ से और वाद्यों के माध्यम से भी दिया जाता था। इसका गायन, वादन एवं नृत्य तीनों में समान स्थान है।

प्र0.4 महाभारत काल के समय में नृत्य कला पर प्रकाश डालिए।

उ0. **नृत्य :—**

नृत्य का उल्लेख महाभारत काल में अनेक स्थलों पर आया है। इस काल में रास लीला नृत्य का भी निर्माण हो गया था साथ ही अन्य प्रकार के नृत्यों का भी उद्‌गम हुआ था। इस काल में यह भी वर्णन मिलता है कि गोपियां नाना प्रकार के नृत्य करके श्री कृष्ण को रिझाती थीं। इस काल में नृत्य कई अवसरों पर होता था। महाभारत काल में अर्जुन के जन्म के अवसर पर गंधर्वों के गायन—वादन के साथ—साथ रंभा, मनोरमा, सुप्रिया जैसी सुन्दर अप्सराओं आदि के नृत्य का भी उल्लेख मिलता है। वहीं द्रौपदी की स्वयंवर सभा भी नट नर्तकों से सुशोभित थी। उस समय चित्रसेन नामक गंधर्व नृत्य एवं गायन के आचार्य थे जिनसे अर्जुन ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। अर्जुन को भी महाभारत काल का एक महान संगीतज्ञ माना जाता है। यह भी वर्णन आता है कि अर्जुन ने आगे चल कर अज्ञातवास के समय राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत और नृत्य की शिक्षा दी थी। राजाओं के शिविरों में भी नर्तकों की उपस्थिति आवश्यक होती थी। इसके अतिरिक्त ब्रह्मयज्ञ के अवसर पर भीर नृत्य हुआ करते थे।

प्र0.5 महाभारत काल की गुरू—शिष्य परम्परा पर प्रकाश डालिए।

उ0. महाभारत काल में गुरू शिष्य परम्परा **:—**

यह परम्परा वैदिककाल से लेकर हर काल में विद्यमान रही है। महाभारत काल में भी गुरू शिष्य परम्परा विद्यमान रही। कुशल नृत्य गीत विशारद, गंधर्व लोग होते थे। इनके द्वारा संगीत की शिक्षा प्रसारित की जाती थी। अर्जुन ने इन्हीं संगीताचार्यों से संगीत की शिक्षा ली थी। इस युग में **फिर यही शिक्षा अर्जुन ने उत्तरा को दी । गुरु का पद सम्माननीय** माना जाता था, **जैसा कि अर्जुन के कथन से प्रतीत होता है**, **जब वह विराट से कहता है कि उत्तरा से उसका सम्बन्ध पितातुल्य है** वह किसी भी प्रकार से उससे **विवाह** नहीं **करेगा। उक्त उल्लेख गुरु शिष्य परम्परा तथा उनके मध्य स**म्बन्ध का द्योतक है।

प्र0.6 पुराणों के विषय में संक्षेप में बताइए।

उ0. भारतीय संगीत में पुराण साहित्य का विशिष्ट स्थान है। वैदिक काल के बाद हमें संगीत के विषय में विस्तार से पौराणिक काल में भी पता चलता है। इस युग के संगीत की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें पुराणों एवं उपनिषदों का अध्ययन करना पड़ता है। ये पुराण हमारे साहित्यिक ग्रन्थ होते हुए भी हमारे देश के महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ माने जाते हैं।

हमारी संस्कृति में 18 प्रकार के पुराण बताए गए हैं। इन पुराणों की रचना महर्षि वेद व्यास अर्थात् कृष्ण द्वैपायन द्वारा की गई। इन 18 पुराणों के नाम इस प्रकार हैं –– ब्रह्म पुराण, पदम पुराण, वैष्णव पुराण, शैव पुराण, भागवत पुराण, नारदीय पुराण, मार्कण्डेय पुराण, आग्नेय पुराण, हरिवंशपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मतस्य पुराण, गरूड़ पुराण तथा वायु पुराण। इन पुराणों के अतिरिक्त 18 उप पुराण भी बताए गए हैं। इन पुराणों में उस समय के संगीत का वर्णन प्राप्त होता है। संगीत के इतिहास की दृष्टि से संगीत की सामग्री जिन पुराणों में उपलब्ध होती है वे हैं –– हरिवंश पुराण, मार्कण्डेय पुराण, विष्णु पुराण एवं वायु पुराण।

इन पुराणों में कथा तथा कथा वाचक नामक विशिष्ट वर्ग का उल्लेख मिलता है जिनका कार्य इन पुराण कथाओं का प्रवचन करना होता था। इस प्रकार की गाथाओं का प्रवचन करने वाले व्यक्ति पौराणिक कहलाते थे।

प्र0.7 वायु पुराण और मारकण्डेय पुराण में संगीत की चर्चा पर प्रकाश डालिए।

उ0. विद्वानों के अनुसार वायु पुराण भारत के प्राचीनतम् पुराणों में से एक है। विद्वानों का कहना है कि वायु पुराण के 86 व 87वें अध्याय में संगीत का वर्णन मिलता है। इसमें वर्ण, अलंकार तथा गीतों का वर्णन मिलता है। जिसमें विभिन्न अलंकारों का वर्णन मिलता है। इस काल में पद किसी गीत के आवश्यक अंग हुआ करते थे और अलंकारों का प्रयोग इन पदों की शोभा को बढ़ाने के लिए किया जाता था। वायु पुराण में सामगान की विशिष्ट महिमा का वर्णन किया गया है। इस पुराण काल में स्वर मण्डल का उल्लेख मिलता है। जिसके अन्तर्गत् सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाओं एवं 49 तानों के समुदाय को स्वर मण्डल की संज्ञा दी गई है। इस पुराण काल में तानों का विभाजन तीन ग्रामों में इस प्रकार किया गया है।

षड़ज ग्राम में 14 तानें

मध्यम ग्राम में 20 तानें

गान्धार ग्राम में 15 तानें

बताई गई हैं। इन तानों का प्रयोग यज्ञ आदि के अवसर पर किया जाता था। वायु पुराण में 'गीतक' का उल्लेख भी मिलता है। गीतक लघु, गुरू आदि अक्षरों और विभिन्न तालों के आधार पर रचित गीत होते हैं। ये गीत विभिन्न प्रकार के होते थे जैसे –– मंद्रक, उपरान्तक, उल्लोण्यक, प्रकारी रोविन्द अथवा रोविन्द, औवेजक और उत्तर जैसे सात प्रकार के गीतों का वर्णन मिलता है।

वायु पुराण के अनुसार ऋग्वेद को जनने वाला समस्त वेदों को जान लेने वाला होता था। इस पुराण में शिव की संगीत प्रियता का उल्लेख भी मिलता है। इस काल में शिव की आराधना करने के लिए वैदिक तथा लौकिक गीतियों का प्रयोग किया जाता था। यह भी कहा जाता है कि सामगान का प्रयोग शिव को प्रसन्न करने के लिए भी किया जाता था। पुराण काल में यह भी वर्णन मिलता है कि देवों के देव महादेव स्वयं भी गीत, वाद्य तथा नृत्य में तत्पर रहते थे। इसलिए शिव की आराधना एवं भक्ति के लिए भक्तगण उन्हें संगीत का प्रसाद अर्पित करते थे। कहा जाता है कि पुराण काल में शिव की उपासना के लिए शंख, पटह, झर्झर, भेरी, डमरू, डिमडिम, गोमुख आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता था तथा साथ ही गीत एवं लास्य नृत्य का भी प्रयोग किया जाता था।

मारकण्डेय पुराण में वीणा, वेणु तथा पुष्कर वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान था। इनका वादन लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों कार्यों के लिए किया जाता था। इसके अनतर्गत् संगीत की दोनों प्रणालियों साम तथा गन्धर्व का पूर्ण उल्लेख मिलता है। इस पुराण काल में सप्त स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, राग, सात गीतकों, तीन लय – विलम्बित, मध्य तथा द्रुत, जाति गान आदि का विवरण 23 वें प्रकरण में किया गया है।

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1 भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण) प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद 2014।

2 संगीत निबन्धावली, संकलन–डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, 1998, प्रकाशक–संगीत कार्यालय, हाथरस, इलाहाबाद।

3 संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

6.11 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 महाभारत काल के संगीत का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 पुराण काल में संगीत की क्या स्थिति थी ? वर्णन कीजिए।

LESSON – 7

Music of Jain And Buddhist Period

जैन काल एवं बौद्ध काल का संगीत

STRUCTURE :

7.1 भूमिका

7.2 उदेश्य

7.3 जैन काल में संगीत

7.4 बौद्ध काल में संगीत

7.5 सारांश

7.6 शब्दकोष

7.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

7.1 भूमिका :–

जैसा कि वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल और पुराण काल में संगीत में धीरे–धीरे परिवर्तन होता गया और उसका प्रचार–प्रसार बढ़ता गया। इन सभी कालों में गायन, वादन तथा नृत्य अर्थात् संगीत की तीनों विधाओं में समय–समय पर विकास होता गया। उसी प्रकार जैनकाल और बौद्ध काल में भी संगीत में कई

उतार–चढ़ाव आते गए लेकिन फिर भी संगीत में समयानुसार कई परिवर्तन एवं विकास हुआ और संगीत धीरे–धीरे प्रगति के मार्ग पर बढ़ता चला गया।

7.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य जैन तथा बौद्ध काल के संगीत का विस्तृत अध्ययन करना है। इन कालों में किस प्रकार संगीत विकास के मार्ग पर अग्रसर हुआ, यह जानना भी इस पाठ का ध्येय है।

7.3 जैन काल में संगीत :–

जैसे–जैसे समय परिवर्तन होता गया, भारत में अलग–अलग शासकों का काल आता गया और इन्हीं के संगीत के साथ–साथ हमारा संगीत भी परिवर्तित होता गया। इसी प्रकार भारत में एक समय जैन काल का आया। इस काल का प्रारम्भ ईसा से 528 वर्ष पूर्व माना जाता है।

जैन काल में ब्राह्मणों के महत्व को कम करने और वर्ग आश्रमों के बन्धनों को तोड़ने का प्रयत्न किया जाने लगा। फलस्वरूप ब्राह्मणों का संगीत पर जो एक मात्र अधिकार था वह सर्वसाधारण के हाथों में पहुँच गया। साथ ही पिछड़े वर्ग के लोगों में भी संगीत का अविर्भाव होने लगा। संगीत की नींव पुनः महावीर स्वामी के सिद्धांतों जैसे –– सत्यता, पावनता, सुन्दरता, अहिंसा इत्यादि पर रखी गई। इस प्रकार जैन काल में संगीत के आध्यात्मिक पक्ष को पुनः ऊँचा किया गया। उस समय राजदरबारों में गणिकाएं हुआ करती थीं। जिनमें संगीत में कुशल गणिकाओं को राजसभाओं में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

जैन काल में डोम जाति के लोग संगीत प्रियता के लिए प्रसिद्ध हुए। इस काल में होली जैसे अवसरों पर अन्य पिछड़ी जाति के लोग नगर मार्गों पर समूह गान व समूह नृत्य प्रस्तुत किया करते थे। धीरे–धीरे इसी काल में जब संगीत का प्रयोग गणिकाओं के हाथों में अधिक आ गया तो संगीत को विलासिता का एक अंग माना जाने लगा। लेकिन इस काल में इतना अवश्य हुआ कि संगीत पुराने जाति बंधनों से मुक्त होकर लगभग जनसाधारण तक पहँचा। जो लोग पहले संगीत के ज्ञान से वंचित रखे जाते थे, वे भी इस कला में पारंगत होने लगे। धीरे–धीरे संगीत फिर से साधना का मुख्य विषय बनने लगा।

जैन काल में अनेक नवीन ध्वनियां और गायन शैलियों ने जन्म लिया। इस काल में अधिकतर मृदंग, वीणा, दुन्दभि व डफ आदि वाद्यों का अधिक प्रयोग होता था। इस युग में वीणा का विशेष रूप से प्रचार रहा।

इस युग में वीणा वाद्य के साथ ही धार्मिक सिद्धांतों का भी प्रचार किया जाता था। जैन काल में परिवादिनी वीणा, विपंची वीणा, महती वीणा, नकुली वीणा, कछपी वीणा आदि प्राचीन वीणाओं का विशेष प्रचार रहा। इस काल में जो कुमारियां सार्वजनिक रूप से समाज में नृत्य किया करती थीं उन्हें प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। इस प्रकार जैन काल में कभी संगीत विलासिता की ओर गया और कभी बन्धनों से मुक्त होकर जनसाधारण तक पहुँचा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली –1

प्र0.1 जैन काल के संगीत का वर्णन कीजिए।

7.4 बौद्धकाल का संगीत :–

ईसा से 533 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध का जन्म हुआ। इस काल को बौद्ध काल के रूप में जाना जाने लगा। बौद्ध काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया। अतः वही संगीतज्ञ सफल समझा जाता था जो कि अपने संगीत से मानव को समस्त विकारों से ऊपर उठा सके। भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण सिद्धांतों को उस काल में गीतों की लड़ियों में पिरो दिया गया था जिनका गायन लोक गायक बहुत ही सुन्दर ढंग से किया करते थे। इन गीत रूपि सिद्धांतों को गायक लोग गाँव–गाँव, नगर–नगर जाकर गाते थे और लोगों को उन्नति के पथ पर अग्रसर करते थे।

इस काल में शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। इस युग को संगीत का प्रकाशपूर्ण युग भी कहा जाता है। इस काल से पहले के समय में संगीत पर जो वासना के बादल छाए थे वह लगभग नष्ट हो चुके थे। यही कारण है कि इस काल में संगीत के कुछ विशेष ग्रन्थ भी लिखे गए।

इस काल में संगीत को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था जिसका स्पष्टिकरण इस बात से लगाया जा सकता है कि बुद्ध के विवाह के समय उनके ससुर ने यह शर्त रखी थी कि उनकी कला सम्पन्न पुत्री के लिए ऐसा भावी वर होना चाहिए जो कि संगीत आदि कलाओं में सिद्धस्त हो। ''पितृ पुत्र समागम'' कथा में यह उल्लेख मिलता है कि बुद्ध के जन्मोत्सव पर पाँच सौ वाद्यों का वृन्दवादन हुआ था। इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बौद्धकाल में संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था।

इस काल में नृत्य भी संगीत का एक अभिन्न अंग था। नर्तकियों और गणिकाओं का संगीत के क्षेत्र में सम्मान किया जाता था। उस समय बौद्ध विहारों में आराधना के लिए कलाकारों को नियुक्त किया जाता था और उन्हें शासक की ओर से धन दिया जाता था। इन कलाकारों पर शासन का पूर्ण अधिकार होता था। इस काल

में भी वीणा वादन को मुख्य वाद्य के रूप में जाना जाता था और अधिकतर गायन–वादन वीणा पर ही होता था। कहने का अर्थ यह है कि इस काल में भी वीणा वादन श्रेष्ठ माना जाता था। कहा जाता है कि इस काल में वीणा वादन की विशेष प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं। जिनमें विजेताओं को पुरस्कार और राज आश्रय प्राप्त होता था।

इस काल में नालन्दा, विक्रमशिला तथा तदन्तपूरी नामक विश्वविद्यालय थे जिनमें संगीत का स्वतंत्र निकाय (फैकल्टी) हुआ करता था। जहाँ पर भारत के विख्यात अधिष्ठाताओं की नियुक्ति की जाती थी। इस काल में सम्पन्न परिवारों में बालक–बालिकाओं की संगीत शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

इस काल में बौद्ध धर्म के प्रचार में भी संगीत ने विशेष योगदान दिया। इस काल में प्रसिद्ध बौद्ध अश्वघोष ने बुद्ध का संदेश संगीत के द्वारा ही पूरे समाज तक पहुँचाया था। वे गायकों की टोलियां बना कर एक स्थान से दूसरे तक जाया करते थे और गीतों तथा वाद्यों के द्वारा बौद्ध तत्व ज्ञान का प्रसार किया करते थे। संगीत युक्त बौद्ध ज्ञान तत्व को सुन कर लोगों को असीम आनन्द की अनुभूति होती थी। डा0 शरदचन्द्र श्रीधर परांजपे ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में संगीत के योगदान की चर्चा करते हुए लिखा है " बौद्ध धर्म जिसने सम्पूर्ण जगत को क्षणिक तथा संगीत को सैद्धांतिक दृष्टि से हीन माना जाता था, वह भी उसके प्रभाव तथा प्रयोग से अछूता न रह सका।

बौद्धकाल में तक्षशिला विद्यादान का प्रमुख केन्द्र था। इसी प्रकार वाराणसी भी उस समय का एक ऐसा दूसरा विद्याकेन्द्र था जिसमें संगीत की शिक्षा का एक स्वतंत्र विभाग था।

बौद्ध काल में तत्, अवनद, घन तथा सुषिर चारों प्रकार के वाद्यों का प्रचलन था। तत् वाद्यों के अन्तर्गत् वीणा का विशेष स्थान था। परिवादिनी वीणा, विपंची वीणा, बल्लकी वीणा, महती वीणा, नकुली वीणा, कच्छपी वीणा तथा तुम्बवीणा का प्रचलन था। अवनद वाद्यों के अन्तर्गत् मृदंग, पणव, भेरी, डिमडिम तथा दुन्दभि वाद्यों का प्रचलन था। घन वाद्यों में घण्टा, झल्लरी, झांझ, मंजीरा, करताल इत्यादि वाद्य प्रचलित रहे। इसी प्रकार सुषिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुशल, श्रृंग, भेरी, तुरही, वेणु आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध युग में नाटकों का भी प्रचलन रहा। इस युग में नाट्य अथवा नाटक के लिए ''प्रेक्षा'' संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। नाटक के दिग्दर्शक को 'नटाचार्य' कहा जाता था। नाटकों में प्रमुख नट के लिए ''नटगामिणी'' संज्ञा दी गई थी।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि बौद्धकाल में संगीत का प्रचार–प्रसार था। अतः संगीत राजा–महाराजाओं से लेकर जन–साधारण तक प्रचलित रहा। इस प्रकार बौद्ध काल को संगीत का प्रकाशमय काल भी कहा जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 बौद्धकाल में कौन–कौन से विश्वविद्यालय थे ?

प्र0.2 बौद्धकाल में वाद्यों और नाटकों के विषय में क्या कहा गया है ?

7.5 सारांश :–

जैन युग में संगीत की नींव महावीर स्वामी के सिद्धांतों पर रखी गई थी। इतिहास में वर्णित है कि जैनकाल में संगीत ने अपने पुराने जातीय बन्धनों को तोड़ दिया था। संगीत सभी के लिए साधना का विषय बन गया था। इस काल में कई उल्लेखनीय ग्रन्थ भी लिखे गए हैं।

इसी प्रकार बौद्ध साहित्य एवं कलाकृतियों के माध्यम से बौद्ध काल में संगीत का प्रचार–प्रसार मानव कल्याण, आत्मोत्थान तथा जनसाधारण की भलाई के लिए हुआ। परन्तु इस युग में नृत्य में एक समय में विलासपूर्ण अंग प्रदर्शन तथा निम्न स्तर के मनोरंजन हेतु संगीत को मान्यता नहीं थी। बौद्ध काल में संगीत को पूजा के लिए अवश्य मान्यता दी गई थी। 'सद्धर्मपुण्डरीक' पुस्तक में संगीत का अधिकांश उल्लेख पूजा के उपकरण के रूप में ही हुआ है। बौद्धयुग का समाज संगीत के आध्यात्मिक सौन्दर्य से पूर्ण रूप से परिचित था। यही कारण है कि बौद्धकाल संगीत की दृष्टि से अत्यन्त समृद्धशाली रहा है।

7.6 शब्दकोष :–

1 दुन्दभि – एक प्रकार का अवनद वाद्य

2 प्रतिष्ठा – सम्मान

3 सिद्धस्त – पारंगत

4 निकाय – विभाग

5 असीम – अत्यधिक

6 क्षणिक – कुछ पल अथवा समय के लिए

7 हीन – तुच्छ

8 आत्मोत्थान – स्वयं का उत्थान करना

7.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 जैनकाल के संगीत का वर्णन कीजिए।

उ0. **जैन काल में संगीत :–**

जैसे–जैसे समय परिवर्तन होता गया, भारत में अलग–अलग शासकों का काल आता गया और इन्हीं के संगीत के साथ–साथ हमारा संगीत भी परिवर्तित होता गया। इसी प्रकार भारत में एक समय जैन काल का आया। इस काल का प्रारम्भ ईसा से 528 वर्ष पूर्व माना जाता है।

जैन काल में ब्राह्मणों के महत्व को कम करने और वर्ग आश्रमों के बन्धनों को तोड़ने का प्रयत्न किया जाने लगा। फलस्वरूप ब्राह्मणों का संगीत पर जो एक मात्र अधिकार था वह सर्वसाधारण के हाथों में पहुँच गया। साथ ही पिछड़े वर्ग के लोगों में भी संगीत का अविर्भाव होने लगा। संगीत की नींव पुनः महावीर स्वामी के सिद्धांतों जैसे –– सत्यता, पावनता, सुन्दरता, अहिंसा इत्यादि पर रखी गई। इस प्रकार जैन काल में संगीत के आध्यात्मिक पक्ष को पुनः ऊँचा किया गया। उस समय राजदरबारों में गणिकाएं हुआ करती थीं। जिनमें संगीत में कुशल गणिकाओं को राजसभाओं में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

जैन काल में डोम जाति के लोग संगीत प्रियता के लिए प्रसिद्ध हुए। इस काल में होली जैसे अवसरों पर अन्य पिछड़ी जाति के लोग नगर मार्गों पर समूह गान व समूह नृत्य प्रस्तुत किया करते थे। धीरे–धीरे इसी काल में जब संगीत का प्रयोग गणिकाओं के हाथों में अधिक आ गया तो संगीत को विलासिता का एक अंग माना जाने लगा। लेकिन इस काल में इतना अवश्य हुआ कि संगीत पुराने जाति बंधनों से मुक्त होकर लगभग जनसाधारण तक पहँचा। जो लोग पहले संगीत के ज्ञान से वंचित रखे जाते थे, वे भी इस कला में पारंगत होने लगे। धीरे–धीरे संगीत फिर से साधना का मुख्य विषय बनने लगा।

जैन काल में अनेक नवीन ध्वनियां और गायन शैलियों ने जन्म लिया। इस काल में अधिकतर मृदंग, वीणा, दुन्दभि व डफ आदि वाद्यों का अधिक प्रयोग होता था। इस युग में वीणा का विशेष रूप से प्रचार रहा। इस युग में वीणा वाद्य के साथ ही धार्मिक सिद्धांतों का भी प्रचार किया जाता था। जैन काल में परिवादिनी वीणा, विपंची वीणा, महती वीणा, नकुली वीणा, कछपी वीणा आदि प्राचीन वीणाओं का विशेष प्रचार रहा। इस काल में जो कुमारियां सार्वजनिक रूप से समाज में नृत्य किया करती थीं उन्हें प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। इस प्रकार जैन काल में कभी संगीत विलासिता की ओर गया और कभी बन्धनों से मुक्त होकर जनसाधारण तक पहुँचा।

प्र0.2 बौद्ध काल में कौन–कौन से विश्वविद्यालय थे ?

उ0. इस काल में नालन्दा, विक्रमशिला तथा तदन्तपूरी नामक विश्वविद्यालय थे जिनमें संगीत का स्वतंत्र निकाय (फैकल्टी) हुआ करता था। जहाँ पर भारत के विख्यात अधिष्ठाताओं की नियुक्ति की जाती थी। इस काल में सम्पन्न परिवारों में बालक–बालिकाओं की संगीत शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

बौद्धकाल में तक्षशिला विद्यादान का प्रमुख केन्द्र था। इसी प्रकार वाराणसी भी उस समय का एक ऐसा दूसरा विद्याकेन्द्र था जिसमें संगीत की शिक्षा का एक स्वतंत्र विभाग था।

प्र0.3 बौद्धकाल में वाद्यों और नाटकों के विषय में क्या कहा गया है ?

उ0. बौद्ध काल में तत्, अवनद, घन तथा सुषिर चारों प्रकार के वाद्यों का प्रचलन था। तत् वाद्यों के अन्तर्गत् वीणा का विशेष स्थान था। परिवादिनी वीणा, विपंची वीणा, बल्लकी वीणा, महती वीणा, नकुली वीणा, कच्छपी वीणा तथा तुम्बवीणा का प्रचलन था। अवनद वाद्यों के अन्तर्गत् मृदंग, पणव, भेरी, डिमडिम तथा दुन्दभि वाद्यों का प्रचलन था। घन वाद्यों में घण्टा, झल्लरी, झांझ, मंजीरा, करताल इत्यादि वाद्य प्रचलित रहे। इसी प्रकार सुषिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुशल, श्रृंग, भेरी, तुरही, वेणु आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध युग में नाटकों का भी प्रचलन रहा। इस युग में नाट्य अथवा नाटक के लिए ''प्रेक्षा'' संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। नाटक के दिग्दर्शक को 'नटाचार्य' कहा जाता था। नाटकों में प्रमुख नट के लिए ''नटगामिणी'' संज्ञा दी गई थी।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि बौद्धकाल में संगीत का प्रचार–प्रसार था। अतः संगीत राजा–महाराजाओं से लेकर जन–साधारण तक प्रचलित रहा। इस प्रकार बौद्ध काल को संगीत का प्रकाशमय काल भी कहा जाता है।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

7.9 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 जैनकाल के संगीत का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्र0.2 बौद्ध काल में संगीत की क्या स्थिति थी ? व्याख्या कीजिए।

LESSON – 8

Music Of Maurya and Gupta period

मौर्य एवं गुप्त काल का संगीत

STRUCTURE :

8.1 भूमिका

8.2 उदेश्य

8.3 मौर्यकाल का संगीत

8.4 गुप्त काल में संगीत

8.5 सारांश

8.6 शब्दकोष

8.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

8.1 भूमिका :–

मौर्य काल में संगीत का प्रचलन तो था लेकिन उस समय संगीत के अन्तर्गत् मनोरंजन के लिए संगीत इतना अधिक प्रयोग किया जाने लगा था कि जिससे संगीत का आन्तरिक सौन्दर्य दब सा गया था। यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य ने संगीत के विकास के लिए प्रयत्न किया लेकिन संगीत जैसे अपनी मर्यादा को खोता जा रहा था। लेकिन फिर भी इस काल में संगीत का बहुत प्रचार–प्रसार हुआ। दूसरी ओर आरम्भ में गुप्त काल में भी संगीत का लगभग वही स्थान रहा जो कि मौर्य काल में था लेकिन जब समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा तो उसने

संगीत के विकास और प्रचार–प्रसार के लिए बहुत कार्य किए। इस काल में संगीत के कई कार्य हुए। बहुत से संगीत शास्त्रों का लेखन हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल में संगीत में बहुत प्रगति हुई।

8.2 उदेश्य :–

मौर्य काल में एवं गुप्त काल में भी संगीत का बहुत प्रचार–प्रसार हुआ। संगीत का प्रयोग आध्यात्मिक, जनरंजन एवं व्यावसायिक तीनों रूपों में किया जाता था। इस पाठ का उदेश्य दोनों कालों के संगीत का विस्तृत अध्ययन करना है।

8.3 मौर्यकाल का संगीत :–

चन्द्रगुप्त मौर्य का काल संगीत के क्षेत्र में मौर्य काल के नाम से जाना जाता है। यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य ने संगीत के विकास के लिए प्रयत्न किए लेकिन इस युग में संगीत अपनी नैतिक मर्यादा से अलग होता जा रहा था। संगीत मनोरंजन का अधिक पक्षधर हो गया था, जिसके कारण इसका आन्तरिक सौंदर्य नष्ट होता जा रहा था। इस काल में संगीत सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग था। इस काल में कुछ लोगों के ये विचार हो गए थे कि जिस संगीत से उनकी वासना की तृप्ति नहीं होती थी, वह गायन, वादन और नृत्य संगीत की श्रेणी में नहीं माना जाता था। जैसा कि कहा जाता है कि मौर्यकाल में संगीत जन साधारण का हिस्सा बन गया था अतः समाज में उच्च स्थान पाने तथा गोष्ठियों में प्रवेश पाने के लिए व्यक्तियों का संगीत कला में निपुण होना आवश्यक समझा जाता था। इसी काल में एक समय ऐसा आया था जब विवाह योग्य वर–वधु के लिए संगीत कला एवं अन्य कलाओं में प्रवीण होना एक अभिन्न अंग या गुण माना जाता था। महिलाओं की संगीत शिक्षा तो विवाह के बाद भी चलती रहती थी।

मौर्य काल में संगीत ईश्वर आराधना, जन–रंजन और विलासपूर्ण मनोरंजन तीनों के लिए प्रयोग होता था। सांयकाल तक अपने सभी कार्यों से निवृत होकर समस्त संगीत प्रिय व्यक्ति किसी संगीत रसिक के घर में एकत्रित हो कर संगीत के राग–रंग का रसास्वादन किया करते थे। कभी–कभी ऐसी गोष्ठियां गणिकाओं के निवास स्थान पर भी आयोजित की जाती थीं जिसमें नगर के सभ्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति निःसंकोच सम्मिलित होते थे। इस काल में बाहरी नगरों से भी अतिथि कलाकारों को आमन्त्रित किया जाता था और उनकी कला प्रदर्शन के लिए योग्यता अनुसार पुरस्कार भी दिए जाते थे।

मौर्यकाल में संगीत की शिक्षा का प्रावधान भी था। संगीत शिक्षा का प्रबन्ध संगीतशालाओं द्वारा किया जाता था। लगभग सभी ललित कलाओं की शिक्षा इस काल में दी जाती थी। जिसके लिए संस्थाओं में आचार्यों को उनकी योग्यता के अनुसार रखा जाता था और राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था। इस काल में संगीत

कला का अध्ययन सांस्कृतिक उपलब्धी के लिए किया जाता था लेकिन कभी–कभी आवश्यकता पड़ने पर जीविका के निर्वाह के लिए भी संगीत का प्रयोग होता था।

इस काल में राजनैतिक दृष्टि से भी संगीत का प्रयोग किया जाता था। इसी राजनैतिक दृष्टि से युनानी राजा सैल्युकस की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ था। सैल्युकस की पुत्री एक उत्तम संगीतकार थीं। जब उनका विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ तो उसके कारण युनानी संगीत का आगमन भी पहली बार भारत में हुआ था और यह वही समय था जब पहली बार भारत का संगीत युनान पहुंचा।

इसके पश्चात् बिन्दुसार का शासन काल आरम्भ हुआ। इस काल में संगीत में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। बिन्दुसार के पश्चात् जब सम्राट अशोक का शासन काल आरम्भ हुआ तो अशोक ने संगीत को पुनः उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने श्रृंगारिक गीतों का बहिष्कार किया। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने संगीत में विलासिता के प्रयोग पर अंकुश लगाने का प्रयत्न किया। उनकी पत्नी की परिचायिका 'चारू मित्रा'एक उत्तम वीणा वादक भी थीं।

इस युग में धीरे–धीरे एक संगीतज्ञ बनने के लिए सबसे पहले उसके आध्यात्मिक स्वरूप का अध्ययन करना आवश्यक माना जाने लगा। यही वह समय था जब भिन्न–भिन्न देशों में संगीत को उत्कृष्ट रूप से अपनाया गया। जैसे तिब्बत, चीन, जापान, मिस्र, युनान, इन्डोनेशिया और लंका इत्यादि। इन सभी देशों का संगीत भारतीय संगीत के मौलिक तत्वों से समानता रखता है। सम्राट अशोक का समय संगीत के लिए उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि इस समय भारतीय संगीत का स्वरूप विश्वव्यापी बन गया था। अतः मौर्य काल में भारतीय संगीत जहाँ एक ओर विलासिता की ओर जा रहा था वहीं दूसरी ओर कुछ नियमों को कड़ा करने से देशव्यापी संगीत विश्वव्यापी बन गया।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 क्या मौर्यकाल में संगीत की शिक्षा प्रदान की जाती थी ?

प्र0.2 सम्राट अशोक के समय में संगीत की स्थिति क्या थी ?

8.4 गुप्तकाल का संगीत :–

मौर्य शासनकाल के उपरान्त उत्तरी भारत में अनेक सम्राज्यों का उत्थान एवं पतन हुआ। इस अवधि में गुप्त वंश सबसे अधिक महत्वपूर्ण शासन स्थापित करने में सफल हुआ। इस वंश ने चौथी से छठी शाताब्दी तक शासन किया। मौर्य काल के बाद कनिष्क काल का समय माना गया है। कहा जाता है कि कनिष्क काल के किसी भी शासक ने संगीत में विशेष रूची नहीं ली जिससे कनिष्क काल में संगीत का गौरव धूमिल हो गया था।

गुप्त वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम को माना जाता है। चन्द्रगुप्त का समय गुप्तकाल के नाम से जाना जाता है। चन्द्रगुप्त का अधिकतर समय युद्धों आदि में व्यतीत होता था। अतः वह संगीत के लिए कुछ अधिक कार्य न कर सका। लेकिन फिर भी, जैसा कि सभी कालों में होता रहा है कि कहीं न कहीं कुछ गिने–चुने लोगों द्वारा संगीत में इस काल में भी कुछ कार्य होते रहे। इसी काल में महर्षि भरत के पुत्र दतिल द्वारा संगीत का एक विशेष ग्रन्थ लिखा गया जिसे 'दतिलम्' के नाम से जाना गया। ये ग्रन्थ संगीत के लिए एक उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।

चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् उनके पुत्र समुद्रगुप्त शासक बने। समुद्रगुप्त शासक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए। समुद्रगुप्त उच्चकोटी के महाकवि और संगीतज्ञ थे। इसी लिए उन्हें 'काव्य श्रेष्ठ' की उपाधि दी गई थी। कहा जाता है कि समुद्रगुप्त स्वयं एक उत्तम वीणा वादक थे। गुप्तकाल की ताम्रलिपि से ज्ञात होता है कि वे नारद, तुम्बरू जैसे प्रमुख संगीत सम्राटों जैसे वीणा वादक थे। गुप्त काल की स्वर्ण मुद्राओं में समुद्रगुप्त को वीणा बजाते हुए अंकित किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुप्तकाल के शासक भी संगीत में विशेष रूची रखते थे। अतः इनके काल में संगीत का विशेष प्रचार–प्रसार हुआ। यह भी कहा जाता है कि गुप्तकाल में समुद्रगुप्त के समय में संगीत की कुछ चमत्कारी शक्तियों का भी विकास हुआ था। इनके समय में नाटकों पर भी विशेष ध्यान दिया गया। जिससे संगीत के साथ–साथ नाटकों का भी प्रचलन बढ़ता गया। कुछ विद्वानों का कहना है कि इस काल में ही सितार जैसे वाद्य का जन्म हुआ था। इसी काल में लोकगीत और लोक नृत्य भी पूर्ण रूप से प्रचलित रहे और इन विधाओं ने अपने–अपने क्षेत्र में बहुत प्रगति की।

समुद्रगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय शासक बने। जिन्हें विक्रमादित्य के नाम से जाना जाता था। यह तो ज्ञात नही होता कि विक्रमादित्य स्वयं संगीत में पारंगत थे या नही परन्तु यह सत्य है कि वह कला और साहित्य के बहुत बड़े संरक्षक थे। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित विद्वान जितने गुप्तकाल में हुए इतने किसी और युग में नही। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवि कालीदास इसी युग में हुए। कालीदास के कवित्व और नाट्य लेखन का अनुमान उनकी कृतियों जैसे अभिज्ञानशाकुंतलम्, मेघदूतम्, कुमार सम्भव, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंशम्, ऋतुसंहार आदि से लगाया जा सकता है। इन ग्रन्थों में उस समय के विविध सांगीतिक उपादान आदि का उल्लेख मिलता है। इन्होंने इन ग्रन्थों में संगीत एवं राग शब्दों को विशेष अर्थ में प्रयुक्त किया है। इन्होंने कैशिक राग के साथ गीतिमंगल, मंगलगीति, मंगलप्रबन्धगीति आदि तथा कुकंभ राग के साथ जम्भालिका चर्चरी, द्विपादिका आदि का परिचय दिया है। उस समय के विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में तत्कालीन प्रचलित वाद्यों का भी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त अभिनय की भी चर्चा इस युग में मिलती है। ग्रन्थों में अभिनय के आंगिक, वाचिक एवं सात्विक का भी वर्णन किया गया है।

गुप्त काल को प्राचीन भारत का शास्त्रीय युग माना जाता है। इस युग को स्वर्ण युग के नाम से भी पुकारा जाता है। इस युग में संगीत की चमत्कारिक शक्तियों का भी विकास हुआ था। इस युग में नाटकों का भी विशेष प्रचार हुआ। कहा जाता है कि गुप्त काल के शासकों ने संगीत एवं अन्य कलाओं को संरक्षण देने के साथ–साथ इनका प्रचार–प्रसार भी किया। संगीत का प्रचार–प्रसार देश तक ही नहीं अपितु देश से बाहर भी होता रहा क्योंकि इसी युग में भारतीय संगीत रोम, फ्रांस, इंगलैड, आयरलैंड और हंगरी जैसे देशों में भी पहुंचा था। यही कारण है कि इस युग को संगीत का स्वर्णकाल कह कर भी पुकारा जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 गुप्तकाल के चन्द्रगुप्त प्रथम के समय में संगीत की स्थिति क्या थी ?

प्र0.2 समुद्र गुप्त के समय के संगीत के विषय में बताइए।

प्र0.3 गुप्तकाल तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के संगीत का वर्णन कीजिए।

8.5 सारांश :–

मौर्य काल चन्द्रगुप्त मौर्य का काल माना जाता है। चन्द्रगुप्त मौर्य बहुत संगीत प्रेमी तो था लेकिन इस कारण से जितनी प्रगति संगीत की इस युग में होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई। इस काल में जनसाधारण संगीत की शिक्षा पूरी तन्मयता से नहीं ले पाया। इस युग में संगीत को मनोरंजन अर्थात् विलासिता के लिए अधिक प्रयोग किया जाता था। इस युग में युनानी संगीत का विशेष प्रभाव भारतीय संगीत पर पड़ा। बिन्दुसार के पश्चात् जब सम्राट अशोक का काल आया तब फिर से संगीत का आध्यात्मिक रूप सामने आया। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मौर्यकाल के समय संगीतकारों का सामाजिक स्तर नीचा हो गया था लेकिन अशोक के प्रयासों से पुनः संगीत उच्च स्थान पर पहुंच गया था।

गुप्त काल में संगीत की बड़ी प्रगति हुई। इस काल में उच्चकोटी का आदर्श माधुर्य एवं सौन्दर्य भावना गुप्तकाल की विशेषता रही है। इस काल में भारतीय संगीत युरोपिय देशों में पहुंचा। इस काल के शासकों ने संगीताचार्यों एवं कलाकारों को आश्रय भी प्रदान किया। इस युग में संगीत और साहित्य की अदभुत उन्नति हुई। अनेक विद्वानों का कहना है कि भारतीय संगीत का विकास जितना गुप्त काल में हुआ उतना किसी और युग में नही हुआ। यही कारण है कि गुप्त काल को संगीत की उन्नति और प्रचार–प्रसार का युग माना जाता है।

8.6 शब्दकोष :–

1 आध्यात्मिक – ईश्वर से सम्बन्धित

2 आन्तरिक सौन्दर्य – भीतरी सुन्दरता

3 नैतिक मर्यादा – अच्छा आचरण या व्यवहार

4 तृप्ति – सन्तुष्टि

5 जीविका – भरण–पोषण

6 अंकुश – विराम सा रोक

7 परिचायिका – सेविका

8 विश्वव्यापी – जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त अथवा फैला हो

9 उत्थान – उठना या उठाना

10 पतन – विनाश या अवनति

11 धूमिल – धुंधला

12 उपादान – उपहार

8.7 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 क्या मौर्यकाल में संगीत की शिक्षा प्रदान की जाती थी ?

उ0. मौर्यकाल में संगीत की शिक्षा का प्रावधान भी था। संगीत शिक्षा का प्रबन्ध संगीतशालाओं द्वारा किया जाता था। लगभग सभी ललित कलाओं की शिक्षा इस काल में दी जाती थी। जिसके लिए संस्थाओं में आचार्यों को उनकी योग्यता के अनुसार रखा जाता था और राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था। इस काल में संगीत कला का अध्ययन सांस्कृतिक उपलब्धी के लिए किया जाता था लेकिन कभी–कभी आवश्यकता पड़ने पर जीविका के निर्वाह के लिए भी संगीत का प्रयोग होता था।

इस काल में राजनैतिक दृष्टि से भी संगीत का प्रयोग किया जाता था। इसी राजनैतिक दृष्टि से युनानी राजा सैल्युकस की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ था। सैल्युकस की पुत्री एक उत्तम संगीतकार थीं। जब उनका विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से हुआ तो उसके कारण युनानी संगीत का आगमन भी पहली बार भारत में हुआ था और यह वही समय था जब पहली बार भारत का संगीत युनान पहुंचा।

प्र0.2 सम्राट अशोक के समय में संगीत की स्थिति क्या थी ?

उ0. बिन्दुसार के पश्चात् जब सम्राट अशोक का शासन काल आरम्भ हुआ तो अशोक ने संगीत को पुनः उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने श्रृंगारिक गीतों का बहिष्कार किया। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने संगीत में विलासिता के प्रयोग पर अंकुश लगाने का प्रयत्न किया। उनकी पत्नी की परिचायिका 'चारू मित्रा'एक उत्तम वीणा वादक भी थीं।

इस युग में धीरे–धीरे एक संगीतज्ञ बनने के लिए सबसे पहले उसके आध्यात्मिक स्वरूप का अध्ययन करना आवश्यक माना जाने लगा। यही वह समय था जब भिन्न–भिन्न देशों में संगीत को उत्कृष्ट रूप से अपनाया गया। जैसे तिब्बत, चीन, जापान, मिस्र, युनान, इन्डोनेशिया और लंका इत्यादि। इन सभी देशों का संगीत भारतीय संगीत के मौलिक तत्वों से समानता रखता है। सम्राट अशोक का समय संगीत के लिए उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि इस समय भारतीय संगीत का स्वरूप विश्वव्यापी बन गया था। अतः मौर्य काल में भारतीय संगीत जहाँ एक ओर विलासिता की ओर जा रहा था वहीं दूसरी ओर कुछ नियमों को कड़ा करने से देशव्यापी संगीत विश्वव्यापी बन गया।

प्र0.3 गुप्तकाल के चन्द्रगुप्त प्रथम के समय में संगीत की स्थिति क्या थी ?

उ0. गुप्त वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम को माना जाता है। चन्द्रगुप्त का समय गुप्तकाल के नाम से जाना जाता है। चन्द्रगुप्त का अधिकतर समय युद्धों आदि में व्यतीत होता था। अतः वह संगीत के लिए कुछ अधिक कार्य न कर सका। लेकिन फिर भी, जैसा कि सभी कालों में होता रहा है कि कहीं न कहीं कुछ गिने–चुने लोगों द्वारा संगीत में इस काल में भी कुछ कार्य होते रहे। इसी काल में महर्षि भरत के पुत्र दतिल द्वारा संगीत का एक विशेष ग्रन्थ लिखा गया जिसे 'दतिलम्' के नाम से जाना गया। ये ग्रन्थ संगीत के लिए एक उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।

प्र0.4 समुद्र गुप्त के समय के संगीत के विषय में बताइए।

उ0. चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् उनके पुत्र समुद्रगुप्त शासक बने। समुद्रगुप्त शासक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए। समुद्रगुप्त उच्चकोटी के महाकवि और संगीतज्ञ थे। इसी लिए उन्हें 'काव्य श्रेष्ठ' की उपाधि दी गई थी। कहा जाता है कि समुद्रगुप्त स्वयं एक उत्तम वीणा वादक थे। गुप्तकाल की ताम्रलिपि से ज्ञात होता है कि वे नारद, तुम्बरू जैसे प्रमुख संगीत सम्राटों जैसे वीणा वादक थे। गुप्त काल की स्वर्ण मुद्राओं में समुद्रगुप्त को वीणा बजाते हुए अंकित किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुप्तकाल के शासक भी संगीत में विशेष रूची रखते थे। अतः इनके काल में संगीत का विशेष प्रचार–प्रसार हुआ। यह भी कहा जाता है कि गुप्तकाल में समुद्रगुप्त के समय में संगीत की कुछ चमत्कारी शक्तियों का भी विकास हुआ था। इनके समय में नाटकों पर भी विशेष ध्यान दिया गया। जिससे संगीत के साथ–साथ नाटकों का भी प्रचलन बढ़ता गया। कुछ विद्वानों का कहना

है कि इस काल में ही सितार जैसे वाद्य का जन्म हुआ था। इसी काल में लोकगीत और लोक नृत्य भी पूर्ण रूप से प्रचलित रहे और इन विधाओं ने अपने–अपने क्षेत्र में बहुत प्रगति की।

प्र0.5 गुप्तकाल तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के संगीत का वर्णन कीजिए।

उ0. समुद्रगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय शासक बने। जिन्हें विक्रमादित्य के नाम से जाना जाता था। यह तो ज्ञात नही होता कि विक्रमादित्य स्वयं संगीत में पारंगत थे या नही परन्तु यह सत्य है कि वह कला और साहित्य के बहुत बड़े संरक्षक थे। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित विद्वान जितने गुप्तकाल में हुए इतने किसी और युग में नही। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवि कालीदास इसी युग में हुए। कालीदास के कवित्व और नाट्य लेखन का अनुमान उनकी कृतियों जैसे अभिज्ञानशाकुंतलम्, मेघदूतम्, कुमार सम्भव, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंशम्, ऋतुसंहार आदि से लगाया जा सकता है। इन ग्रन्थों में उस समय के विविध सांगीतिक उपादान आदि का उल्लेख मिलता है। इन्होंने इन ग्रन्थों में संगीत एवं राग शब्दों को विशेष अर्थ में प्रयुक्त किया है। इन्होंने कैशिक राग के साथ गीतिमंगल, मंगलगीति, मंगलप्रबन्धगीति आदि तथा कुकंभ राग के साथ जम्भालिका चर्चरी, द्विपादिका आदि का परिचय दिया है। उस समय के विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में तत्कालीन प्रचलित वाद्यों का भी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त अभिनय की भी चर्चा इस युग में मिलती है। ग्रन्थों में अभिनय के आंगिक, वाचिक एवं सात्विक का भी वर्णन किया गया है।

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण) प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद 2014।

2. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

4 mpgkpdf.com

8.9 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 जैन काल के संगीत का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 गुप्त काल में संगीत की क्या स्थिति थी ? वर्णन कीजिए।

LESSON - 9

Music in the treatises of Bharat

भरत काल में संगीत

STRUCTURE :

9.1 भूमिका

9.2 उदेश्य

9.3 भरत काल में संगीत

9.4 भरत काल में संगीत के वर्ग

9.5 भरत काल में गीतियाँ

9.6 भरत काल में श्रुति व्यवस्था एवं ग्राम

9.7 भरत काल में स्वर

9.8 भरतकाल में नृत्य

9.9 भरत काल में गायक–वादक के गुण–दोष

9.10 भरत काल में वाद्यवृंद

9.11 भरत के नाट्य शास्त्र में वर्णित संगीत अध्याय

9.11.1 28वां अध्याय

9.11.2 29वां अध्याय

9.11.3 30वां अध्याय

9.11.4 31वां अध्याय

9.11.5 32वां अध्याय

9.11.6 33वां अध्याय

9.12 सारांश

9.13 शब्दकोष

9.14 स्वयं परीक्षण प्रश्न– उत्तर

9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.16 महत्वपूर्ण प्रश्न

9.1 भूमिका :–

भरत का नाटयशास्त्र नाटयकला से सम्बन्धित एक प्राचीनतम् ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उन्होंने अपने समय के संगीत का भी कुछ अध्यायों में वर्णन किया है। भरत द्वारा रचित इस ग्रन्थ में हमें संगीत शास्त्र, अलंकार, रस, छंदशास्त्र आदि का वर्णन मिलता हैं कहने का तात्पर्य यह है कि हमें भरतकाल के संगीत के विषय में पूर्ण जानकारी इससे उपलब्ध होती है।

9.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य महान शास्त्रकार महर्षि भरत जिन्होंने पंचम वेद नाटय शास्त्र का लेखन किया और जो भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है उन भरत के समय के संगीत का विस्तृत अध्ययन करना है।

9.3 भरत काल में संगीत :–

भरत मुनि का समय 5वीं शताब्दी माना जाता है। इन्हें संगीत शास्त्र का विख्यात लेखक भी माना जाता है। जहाँ तक शास्त्र लेखन की बात है, भरत मुनि को महर्षि व्यास एवं बाल्मीकि के समान माना जाता है। भरत मुनि ने पाँचवीं शताब्दी के लगभग नाट्य शास्त्र ग्रन्थ की रचना की। जो कि इस काल की एक बड़ी उपलब्धी मानी जाती है। नाट्य शास्त्र को इसकी प्राचीनता एवं विशालता के कारण 'पंचम वेद' कह कर भी पुकारा जाता है। यद्यपि यह ग्रन्थ नाट्य पर आधारित है तथापि यह शास्त्र संगीत का आधार ग्रन्थ भी माना जाता है। प्राचीन समय के भारतीय संगीत का यदि कोई भी शास्त्र उपलब्ध है तो वह भरत का नाट्य शास्त्र है। इतिहासकारों का मानना कि कनिष्क काल के समय में ही भरत ने नाट्य और संगीत के इस प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी।

यद्यपि नाट्य शास्त्र का विषय नाटक है संगीत नहीं लेकिन फिर भी अपने नाटकों में संगीत का विशेष स्थान होने के कारण भरत मुनि ने संगीत का विस्तृत वर्णन अपने नाट्य शास्त्र में किया है। इन्होंने संगीत विषय पर ही अलग से कुछ अध्याय लिखे हैं। जिससे हमें उस समय के संगीत की जानकारी उपलब्ध होती है। इस ग्रन्थ से हमें उस समय के प्रचलित गायन, वादन, नृत्य एवं नाट्य के विषय में पता चलता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 भरत ने नाट्य शास्त्र कब रचा ?

प्र0.2 नाटय शास्त्र का विषय क्या था ?

9.4 भरत के समय में संगीत के वर्ग :–

भरत के समय में संगीत दो भागों में विभाजित हो गया था। जिसे मार्गी तथा देशी संगीत कह कर पुकारा जाता था। इस काल में नाट्य के अन्तर्गत् गान्धर्व गीत का प्रयोग होता था। गान्धर्व गीत के तीन अंग माने जाते थे –– स्वर, ताल और पद। जिनमें से स्वर को विशेषता प्राप्त थी तथा अन्य दो भागों को इसके आश्रित माना जाता था। भरत के समय में ध्रुवा गीतों का भी प्रचलन था और इसमें भाव और ताल की विशेषता रहती थी। ध्रुवा गीतों का गायन स्वर, वर्ण स्थान और लय के साथ किया जाता था। इस ग्रन्थ में ध्रुवा गीतों का वर्णन इस लिए पाया जाता है क्योंकि नाट्य में इन गीतों की विशिष्टता रहती थी। ध्रुवा गीतों के लिए नाट्य के अनुकूल, छंदों का प्रयोग होता था। इन ध्रुवा गीतों के साथ मृदंग और पुष्कर वाद्यों (पखावज) की संगति की जाती थी। उस काल में ध्रुवा गीतों के अतिरिक्त अन्य प्राचीन गीतों का भी प्रचलन था जैसे आसारित और वर्धमान आदि।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 भरत के समय में संगीत को कितने वर्गों में बांटा गया ?

प्र0.2 ध्रुवा गीतों के साथ किन वाद्यों की संगति होती थी ?

9.5 भरत काल में गीतियां :–

भरत के समय में संगीत में गीतियों का भी प्रयोग होता था। उस समय चार प्रकार की गीतियों का प्रयोग होता था। जिनके नाम इस प्रकार हैं –– मागधी, अर्धमागधी, संभाविता और पृथुला। भरतकाल में जाति गायन भी प्रचार में रहा। ये जाति गायन ग्राम और मूर्च्छनाओं के आधार पर होता था। जाति गायन के दस लक्षण माने जाते थे। इस काल में जाति की 7 शुद्ध तथा 11 विकृत कुल मिलाकर 18 जातियाँ मानी जाती थीं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 भरतकाल में कितनी गीतियां मानी जाती थी ?

प्र0.2 जाति गायन के कितने लक्षण माने गए ?

9.6 भरत काल में श्रुति व्यवस्था एवं ग्राम :–

भरत के समय में संगीत के विषय में जो महत्वपूर्ण देन संगीत जगत को प्राप्त होती है वह श्रुति–स्वर व्यवस्था है। इन्होंने श्रुति–स्वर विभाजन किया और कुल 22 श्रुतियां मानी और उन 22 श्रुतियों पर 7 शुद्ध स्वरों की स्थापना की। उन्होंने निम्न श्लोक के आधार पर 22 श्रुतियों पर सात शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की। यह श्लोक है –––

च्तुश्चतुश्चतुश्चैव षड़जमध्यमपंचमा।

द्विद्विनिषादगान्धारो तिस्त्रीरिषभधैवतो।।

इसी श्लोक के आधार पर उन्होंने षड़ज और मध्यम ग्राम की भी स्थापना की। भरत के समय में ये दो ही ग्राम प्रचलित थे। इसके अतिरिक्त भरत के नाट्य शास्त्र में श्रुति से ग्राम, ग्राम से मुर्च्छना और मूर्च्छना से जाति की उत्पत्ति बताई गई है। आगे चलकर इन्हीं जातियों से ग्राम राग और ग्राम राग से अन्य रागों की उत्पत्ति बताई गई है। भरत ने अपने समय में 22 श्रुतियों को सिद्ध किया और इन्हें सिद्ध करने के लिए सारणा चतुष्टई का प्रयोग किया। इससे उन्होंने यह सिद्ध किया कि चारों सारणाओं में भी षड़ज–पंचम भाव की स्थिति समान रूप से बनी रहती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 भरत ने कितनी श्रुतियां मानी ?

प्र0.2 भरत ने अपने समय में कितने ग्रामों का वर्णन किया ?

9.7 भरतकाल में स्वर :–

भरत के समय में सात स्वरों का प्रचार हो चुका था और इन्हें षड़ज, रिषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद कहा जाता था। इस काल में किसी स्वर की महता उसके प्रयोग पर निर्भर करती थी। इन स्वरों के प्रयोग के लिए वादी, सम्वादी, विवादी तथा अनुवादी संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। प्रमुख स्वर को वादी कहा जाता था और जिन दो स्वरों के मध्य 9 और 13 श्रुतियों का अन्तर होता था वह संवादी स्वर कहलाता था। भरत

के समय में सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त दो विकृत स्वर भी प्रचलित थे जिससे इस काल में नौ स्वरों का प्रचलन रहा। ये दो विकृत स्वर थे – अन्तर गान्धार और काकली निषाद।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 भरत के समय में कितने स्वर प्रचलित थे ?

प्र0.2 संवादी स्वरों के बीच कितनी श्रुतियों का अन्तर होता था ?

9.8 भरतकाल में नृत्य :–

भरत काल में नृत्य का भी प्रचलन रहा। इस काल में ताण्डव तथा लास्य नृत्य का प्रचलन था। इस काल में नर्तकियों का 14 कलाओं में निपुण होना आवश्यक माना जाता था। इस काल में नाट्य का तो विशेष प्रचलन रहा ही है। स्त्री और पुरूष दोनों ही नाटकों में भाग लिया करते थे। इसका व्यवसाय करने वालों को इस काल में 'नट' कहा जाता था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 भरत काल में कौन से नृत्य प्रचलित थे ?

प्र0.2 नाटक में भाग लेने वालों को क्या कहा जाता था ?

9.9 भरत काल में गायक–वादक के गुण–दोष :–

भरत के समय में संगीत के अन्तर्गत् गायक के कण्ठ के गुण–दोषों की भी मान्यता थी। इस काल में गायकों के मुख्य छः गुण माने गए थे और इन छः गुणों को ध्यान में रख कर ही गायन किया जाता था। इसके अतिरिक्त पाँच अवगुण माने जाते थे जिनका गायक कलाकार में होना दोषपूर्ण माना जाता था। भरत के काल में संगीत में रस पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। भरत के नाट्य शास्त्र में रस पर भी चर्चा की गई है। भरत ने नाट्य शास्त्र में श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, विभत्स और अदभुत रस की व्याख्या की है। उनका मानना था कि इन रसों में से केवल चार रस – वीर, करूण, श्रृंगार और भक्ति रस ही संगीत में प्रयोग होते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 7

प्र0.1 भरत काल में गायकों के मुख्य कितने गुण माने गए ?

प्र0.2 भरत ने कितने स्वरों की व्याख्या की है ?

9.10 भरत के समय में वाद्य वृन्द :–

भरत के समय में वाद्यवृंद का भी प्रचलन रहा। उस समय वाद्यवृंद के लिए 'कुतुप' शब्द का प्रयोग किया जाता था। भरत के समय में ही वाद्यों को चार भागों में बांटा गया था। ये चार भाग थे –– तत्, अवनद, सुषिर तथा घन वाद्य। इन वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य तीनों के साथ किया जाता था। अवनद और घन वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन और नृत्य के साथ ताल देने के लिए किया जाता था। उस समय तालों की संख्या निश्चित हुआ करती थीं। उस समय मुख्य पाँच ताल माने जाते थे। जो कि इस प्रकार हैं –– चचत्पुट, चाचपुट, षटपितापुत्रक अथवा षटपिता पुत्र, सम्यक् वेष्टाक् तथा उद्धट। इन तालों के अन्तर्गत् मात्राओं का क्रम इस प्रकार होता था –– प्लुत, लघु और गुरू। इसी प्रकार भरत के समय में वीणा वाद्य को श्रेष्ठ और लोकप्रिय वाद्य माना जाता था। इस काल में एक तंत्री वीणा जिसे किन्नरी वीणा भी कहा जाता है बहुत प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त मत वीणा, कोकिला वीणा इत्यादि अनेक वीणाएं प्रचलित रहीं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 8

प्र0.1 भरत काल में वाद्यवृंद को क्या कहते थे ?

प्र0.2 भरत काल में मुख्य कितने ताल थे ?

9.11 भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत अध्याय :–

विद्वानों का मानना है कि भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र को कुल 36 अध्यायों में विभाजित किया है। जिसमें 28वें अध्याय से लेकर 33वें अध्याय तक अर्थात् कुल 6 अध्यायों में संगीत की चर्चा की है। इन छः अध्यायों में जिस संगीत प्रकारों की व्याख्या भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में की है उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है ––

9.11.1 28वां अध्याय ––

इस अध्याय में भरत ने वाद्यों का वर्णन किया है। जिसमें वाद्यों को चार भागों में बांटा गया है। तत्, अवनद, घन और सुषिर। सुषिर वाद्यों का नाटक में किस प्रकार प्रयोग किया जाना चाहिए यह भी बताया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि जब आतोद्य अर्थात् तंत्री वाद्यों का वादन स्वर, ताल और पदों अर्थात् गीत का आश्रय लेता है तो वही गान्धर्व कहलाता है। इसमें वाद्यवृंद की भी चर्चा की गई है और वाद्य वृंद को 'कुतुप' कह कर पुकारा गया है। इसके अतिरिक्त स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि का वर्णन भी किया गया है। कहा जाता है कि इस अध्याय को भरत मुनि ने 151 श्लोकों में समाप्त किया है।

9.11.2 29वां अध्याय —

इस अध्याय में भरत मुनि ने रस सिद्धांत का वर्णन किया है। उन्होंने इसमें यह बताया है कि किस भाव और किस रस के लिए किस जाति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त गीति और उसके चार भेदों का वर्णन, तंत्र वाद्यों का वर्णन तथा वीणाओं के सम्पूर्ण स्वरूप की चर्चा की है। इस अध्याय में 156 श्लोक विद्यमान हैं।

9.11.3 30वां अध्याय —

इस अध्याय में सुषिर वाद्य वंशी का वर्णन किया गया है। वंशी में 4 , 3 और 2 श्रुतियों में उत्पन्न होने वाले स्वरों का वादन करने का विधान बताया गया है। यह भी बताया गया है कि साधारण और काकली स्वरों को किस प्रकार से उत्पन्न किया जाता था। भरत ने यह भी बताया है कि कंठ स्वर, वीणा स्वर और वेणु स्वरों में एकरूपता हो जाने पर वह अधिक अच्छा लगता है। भरत के इस अध्याय में केवल 13 श्लोक बताए गए हैं।

9.11.4 31वां अध्याय —

इस अध्याय में लय और ताल का वर्णन किया गया है। उनके अनुसार कला, पात और लय से युक्त काल खंड जो घन वाद्यों के अन्तर्गत् आता है वह ताल कहलाता है। ताल का वर्णन करने के साथ गीत के सात प्रकारों का भी वर्णन किया है। इस अध्याय में 502 श्लोक बताए गए हैं।

9.11.5 32वां अध्याय —

इस अध्याय में ध्रुवा गीतों का वर्णन किया गया है। ये गीत यदि एक वस्तु में निबद्ध होते थे तो उन्हें ध्रुवा गीत कहा जाता था, दो वस्तु में निबद्ध होने पर 'परिगितिका', तीन वस्तु में निबद्ध गीत 'मद्रक' और चार वस्तु में निबद्ध गीत 'चतुष्पदा' कहलाते थे। ध्रुवा गीतों में तिस्त्र और चतस्त्र ताल रहती है। इस अध्याय में गायक, वादक, आचार्य और शिष्य के कंठ स्वर के गुण–दोषों का भी वर्णन मिलता है। यह अध्याय 525 श्लोकों में समाप्त बताया गया है।

9.11.6 33वां अध्याय —

इस अध्याय में अवनद वाद्यों की उत्पत्ति और उपयोगिता का वर्णन मिलता है। मृदंग, पणव व दुर्दर वाद्यों की वादन विधि और उनके लक्षण का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त वादकों के गुण–अवगुणों का वर्णन भी किया गया है। विद्वानों का कहना है कि यह अध्याय 301 श्लोकों में समाप्त किया गया है।

इस प्रकार भरत के द्वारा लिखे ग्रन्थ नाट्य शास्त्र से हमें भरत कालीन संगीत की विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 9

प्र0.1 नाट्यशास्त्र में संगीत के मुख्य कितने अध्याय हैं ?

प्र0.2 नाटयशास्त्र के 29वें अध्याय में किसका वर्णन किया गया है ?

9.12 सारांश :

नाट्य शास्त्र भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ यद्यपि संगीत पर नहीं लिखा गया है लेकिन फिर भी इस ग्रन्थ से संगीत के विषय में जो अमूल्य जानकारी हमें प्राप्त होती है वह हमारे आधुनिक संगीत की आधारशीला मानी जाती है।

9.13 शब्दकोष :–

1 विशिष्टता – विशेषता
2 महता – महत्व
3 आश्रय –सहारा

9.14 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 भरत ने नाट्यशास्त्र कब रचा ?

उ0. पाँचवीं शताब्दी में।

प्र0.2 नाटय शास्त्र का विषय क्या था ?

उ0. नाटक।

प्र0.3 भरत के समय में संगीत को कितने वर्गों में बांटा गया ?

उ0. दो – मार्गी और देशी।

प्र0.4 ध्रुवा गीतों के साथ किस वाद्य की संगति होती थी ?

उ0. मृदंग और पखावज।

प्र0.5 भरत ने कितनी गीतियों का वर्णन किया है ? नाम बताएं।

उ0. चार – मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला।

प्र0.6 जाति गायन के कितने लक्षण माने गए ?

उ0. दस।

प्र0.7 भरत ने कितनी श्रुतियां मानी ?

उ0. 22

प्र0.8 भरत ने नाट्य शास्त्र में कितने ग्रामों का वर्णन किया है ?

उ0. दो – षड़ज और मध्यम ग्राम।

प्र0.9 भरत ने कितने स्वर माने हैं ?

उ0. नौ (9) स्वर।

प्र0.10 संवादी स्वर के बीच कितनी श्रुतियों का अन्तर होता था ?

उ0. 9 – 13 श्रुतियों का।

प्र0.11 भरतकाल में कौन–कौन से नृत्य प्रचलित थे ?

उ0. ताण्डव और लास्य।

प्र0.12 नाटक में भाग लेने वालों को क्या कहा जाता था ?

उ0. नट।

प्र0.13 भरतकाल में गायकों के मुख्य कितने गुण माने गए ?

उ0. 6 (छः)

प्र0.14 भरत ने कितने रसों की व्याख्या की है ?

उ0. कुल आठ रस।

प्र0.15 भरतकाल में वाद्यवृंद को क्या कहते थे ?

उ0. कुतुप।

प्र0.16 भरत के समय में मुख्य कितने ताल थे ?

उ0. पाँच।

प्र0.17 भरत ने कितने अध्यायों में संगीत की चर्चा की है?

उ0. छः अध्यायों में।

प्र0.18 भरत ने 29वें अध्याय में किसका वर्णन किया है ?

उ0. रस।

9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डा0 शरदचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1968।

2. हरिकृष्ण गोस्वामी, भारतीय संगीत की परम्परा, कनिष्क पब्लिशर, नई दिल्ली 2004।

3. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

9.16 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 भरत ने कितने अध्यायों में संगीत का वर्णन किया है ? व्याख्या करें।

प्र0.2 भरत के समय के संगीत की अलग–अलग विधा का वर्णन करें।

LESSON – 10

Music in the treatises of Matang and Sharangdev

मतंग और शारंगदेव के समय का संगीत

STRUCTURE :

10.1 भूमिका

10.2 उदेश्यमतंग काल में संगीत

10.3 मतंग काल में संगीत

10.4 मतंग के मूर्च्छना प्रकार

10.4.1 सात स्वरों वाली मूर्च्छना

10.4.2 12 स्वरों वाली मूर्च्छना

10.4.1 सात स्वरों वाली मूर्च्छना

10.4.1.1 पूर्ण

10.4.1.2 षाड़व

10.4.1.3 औड़व

10.4.1.4 साधारण

10.5 मतंग के समय में गीति और राग

10.6 मतंग के समय में ग्राम और मूर्च्छना

10.7 मतंग का बृहद्देशी

10.8 शारंगदेव काल का संगीत

10.9 शारंगदेव काल में संगीत के दो भाग

10.9.1 मार्गी अथवा शास्त्रीय संगीत

10.9.2 देशी संगीत

10.10 स्वर एवं स्वर–संवाद के विषय में शारंगदेव का कथन

10.11 शारंगदेव के अनुसार ग्राम भेद

10.12 सारांश

10.13 शब्दकोष

10.14 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.16 महत्वपूर्ण प्रश्न

10.1 भूमिका :–

मतंग रामायण कालीन ऋषि भी माने जाते हैं। इनका काल छठी शताब्दी के लगभग माना जाता है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'बृहद्देशी' का समय 7वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। इस ग्रन्थ में उन्होंने उस समय के संगीत का तो वर्णन किया ही है साथ ही भरतकालीन संगीत के विषय में भी चर्चा की है। इन्होंने देशी शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया था अतः इसीलिए इस ग्रन्थ का नाम बृहद्देशी पड़ा। मतंग काल में नाद, श्रुति, स्वर, ताल, वाद्य, तथा राग आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

इसी प्रकार शारंगदेव के समय के संगीत के विषय में 'संगीत रत्नाकर' में विस्तार से जानकारी उपलब्ध होती है। यह संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थ में सात अध्याय माने गए हैं। जिनमें उस समय के संगीत का वर्णन हमें मिलता है। इस ग्रन्थ को 'सप्तध्यायी' भी कहा जाता है।

10.2 उदेश्य :–

मतंग और शारंगदेव के समय में किस प्रकार का संगीत प्रचलित रहा, संगीत की क्या स्थिति उस काल में थी तथा संगीत का कितना विकास इन दोनों कालों में हुआ, इन सब विषयों की जानकारी प्राप्त करना ही इस पाठ का उदेश्य है।

10.3 मतंग काल में संगीत :–

मतंग मुनि का समय छठी शताब्दी माना जाता है। इन्हें भरत का अनुगामी शास्त्री माना जाता है। संगीत शास्त्रकार के रूप में भरत के बाद मतंग मुनि का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। मतंग के द्वारा रचित ग्रन्थ 'बृहत्देशी' को नाट्य शास्त्र के समान ही एक विशाल ग्रन्थ माना जाता है जिसमें उस समय के संगीत का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान इसे सातवीं शताब्दी, कुछ आठवीं तथा कुछ नवीं शताब्दी का मानते हैं। लेकिन अधिकतर विद्वान इसे 7वीं शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं।

मतंग ने भरत काल के संगीत का वर्णन तो किया ही है इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने काल में प्रचलित संगीत का वर्णन भी बृहत्देशी में किया है। उन्होंने अपने काल में द्वादश स्वर मूर्च्छना का अविष्कार किया क्योंकि उनसे पहले और उनके बाद के ग्रन्थकारों ने सप्त स्वर मूर्च्छना को ही स्वीकार किया है। केवल मतंग ने सर्वप्रथम 12 स्वरो का वर्णन किया है। इन 12 स्वरों में मतंग मुनि ने 7 स्वर एक सप्तक के लिए हैं और 5 स्वर दूसरे सप्तक के लिए हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 मतंग के बृहत्देशी के विषय में संक्षेप में बताएं।

प्र0.2 मतंगकाल में स्वर के विषय में क्या कहा गया।

10.4 मतंग के मूर्च्छना प्रकार :–

मतंग ने मूर्च्छना के दो प्रकारों का भी वर्णन किया है। इन्होंने मूर्च्छना के दो प्रकार बताए हैं ––

10.4.1 सात स्वरों वाली मूर्च्छना

10.4.2 बारह स्वरों वाली मूर्च्छना

10.4.1 सात स्वरों वाली मूर्च्छना :–

सात स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना के इन्होंने चार प्रकार बताए हैं जो कि इस प्रकार हैं ––

10.4.1.1 पूर्ण :– सात स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना 'पूर्ण' कहलाती है।

10.4.1.2 षाड़व :– छः स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना 'षाड़जी' कहलाती है।

10.4.1.3 औडव :– पांच स्वरों वाली मूर्च्छना 'औडव' कहलाई।

10.4.1.4 साधारण :– काकली और अन्तर स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना 'साधारण' कहलाती है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 मतंग ने मूर्छना के कितने प्रकार माने हैं ?

प्र0.2 मतंग ने अलग–अलग स्वर संख्या वाली मूर्छना को किस नाम से पुकारा है ?

10.5 मतंग के समय में गीति और राग :–

मतंग ने बृहत्देशी में गीतियों का भी वर्णन किया है और इसके चार प्रकार बताए हैं। ये चार प्रकार हैं–– मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला। मतंग के समय में सर्वप्रथम संगीत के साहित्य में 'राग' शब्द का प्रयोग किया गया। इन्होंने यह भी वर्णन किया है कि जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति हुई है। इन्होंने जातियों का भी वर्णन किया है और उनके दस लक्षण बताए हैं। इसी काल में जातियों का स्थान रागों ने ले लिया और प्राचीन रागों के स्थान पर कुछ नए राग भी रचित हुए।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 मतंग ने कितनी गीतियां बताई ?

प्र0.2 मतंगकाल में राग के विषय में क्या कहा गया ?

10.6 मतंग काल में ग्राम और मूर्च्छना :–

मतंग काल में ग्रामों का वर्णन भी मिलता है। इन्होंने षड़ज और मध्यम दोनों ग्रामों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त षड़ज ग्राम में षड़ज स्वर से तथा मध्यम ग्राम में मध्यम स्वर से मूर्च्छनाएं प्रारम्भ करने की प्रक्रिया का वर्णन भी किया है। इन्होंने भी प्रत्येक ग्राम से 7–7 मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति बताई और कुल 14 मूर्च्छनाएं बृहत्देशी में वर्णित की। इनमें से प्रत्येक मूर्च्छना के चार भेद बताए हैं। जो कि इस प्रकार हैं ––

1 शुद्धा

2 सान्तरा

3 काकली संहिता

4 अंतर काकली संहिता

इस प्रकार कुल मिलाकर 14 × 4 = 56 मूर्च्छनाएं बताई। इसके अतिरिक्त बृहत्देशी में सप्त स्वर मूर्च्छना के बाद द्वादश स्वर मूर्च्छना का वर्णन किया है और इस द्वादश स्वर मूर्च्छना का मुख्य उदेश्य यही था कि संगीत में मंद्र, मध्य और तार स्थानों की प्राप्ति की जा सके।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 मतंगकाल में ग्राम के विषय में संक्षेप में बताइए।

प्र0.2 मतंग ने मूर्छना के कितने भेद बताए हैं ?

10.7 मतंग का बृहद्देशी :–

मतंग मुनि द्वारा रचित ग्रन्थ बृहद्देशी एक अद्वितीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें अध्यायों की संख्या नहीं दी गई है। लेकिन प्रकरणों के अनुसार इसको दस प्रकरणों में विभाजित किया गया है। जो कि इस प्रकार है ––

1 देसी लक्षणम्

2 नादोत्पत्ति

3 श्रुति निर्णय

4 स्वर्ण निर्णय

5 33 अलंकार

6 गीतियां

7 जाति

8 राग लक्षणम्

9 भाषा लक्षणम्

10 प्रबन्ध अध्याय

कई विद्वानों ने मतंग को वाद्यों में निपुण बताया है। उन्हें चित्रा वीणा का महान कलाकार माना जाता है जिसके लिए राणा कुंभा ने इन्हें 'चैत्रिक'' कहा है। सबसे पहले बृहद्देशी में राग शब्द का उल्लेख हुआ है। मतंग ने राग जाति की परिभाषा देते समय लिखा है कि '' स्वरों का ऐसा आकर्षक मेल जो चित को प्रसन्नता दे वह राग कहलाता है।'' उन्होंने जाति के दस लक्षणों का वर्णन किया है जो कि आज भी रागों में प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त अपने ग्रन्थ में मतंग ने देशी की उत्पत्ति और लक्षण, नादोत्पत्ति के अन्तर्गत् नाद महिमा, उत्पति, प्रकार और पांच भेदों की चर्चा की है। श्रुति के अन्तर्गत् श्रुति उत्पति, चार प्रकार की श्रुतियां, 66 और 22 श्रुतियों में अंतर, श्रुति का प्रमाण और परिणाम, श्रुति और स्वर में सम्बन्ध के विषय में भी चर्चा की है। इसके अतिरिक्त ग्राम, मूर्च्छना, तान, जाति, स्वर, सप्त स्वरों, 12 स्वरों की मूर्च्छना विधि, 33 प्रकार के अलंकारों का उल्लेख भी अपने ग्रन्थ में किया है। सात शुद्ध तथा 11 विकृत जातियों को स्वीकार किया है। जातियों के लक्षण ग्रह आदि का भी वर्णन किया है।

इस ग्रन्थ में मतंग ने ग्राम रागों, भाषा, विभाषा आदि का भी वर्णन किया है। इन्होंने गीतियों जैसे शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, राग तथा साधारणी गीति के अंतर्गत् 32 रागों के नामों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ का नाम 'बृहद्देशी' से स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ में 'बृहद' रूप से देशी रागों की व्याख्या की गई है। मतंग ने इन्हीं प्रचलित देशी रागों के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए इस ग्रन्थ को लिखा है। मतंग के समय में न केवल जातियों का स्थान रागों ने ले लिया था वरन अनेक प्राचीन रागों के स्थान पर कुछ नवीन राग भी प्रचलित हो गए थे।

इस प्रकार मतंग के काल में संगीत में बहुत प्रचार–प्रसार हुआ और साथ ही कुछ नई चीज़ों का भी आविष्कार हुआ।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 बृहत्त्देशी कब लिखा गया ?

प्र0.2 बृहत्त्देशी को कितने प्रकरणों में विभाजित किया गया ?

10.8 शारंगदेव काल का संगीत :–

आचार्य शारंगदेव का समय 12वीं –13वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। 13वीं शताब्दी के लगभग शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ 13वीं शताब्दी की एक महान उपलब्धी मानी जाती है। संगीत रत्नाकर उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों संगीत पद्धतियों का आधार ग्रन्थ माना जाता है। संगीत विद्वानों तथा समीक्षकों ने इस ग्रन्थ को और इसके रचयिता को भारतीय संगीत के विकास के लिए एक अमूल्य देन बताया है। शास्त्र में इस ग्रन्थ का संदर्भ पग–पग पर आता है। जब इस ग्रन्थ की रचना हुई थी तब भारत में संगीत की केवल एक ही पद्धति प्रचार में थी। उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय इस प्रकार की संगीत की कोई दो धाराएं नहीं थी। इसी लिए इस ग्रन्थ को दोनों पद्धतियो में आधार ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है।

इस ग्रन्थ की दो टीकाएं लिखी गई हैं। एक सिंहभूपाल तथा दूसरी कल्लीनाथ द्वारा। इस ग्रन्थ में हमें प्राचीन काल के संगीत के साथ–साथ शारंगदेव के समय के संगीत का भी पता चलता है। शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में 7 अध्यायों का वर्णन किया है। ये अध्याय हैं ––– स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, नृत्याध्याय।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 संगीत रत्नाकर के विषय में संक्षेप में बताइए।

प्र0.2 संगीत रत्नाकर के अध्यायों के नाम बताइए।

10.9 शारंगदेव के समय में भी संगीत दो भागों में बंटा था — मार्गी अथवा शास्त्रीय तथा देशी संगीत।

10.9.1 मार्गी अथवा शास्त्रीय संगीत :– जिस संगीत की उत्पत्ति बह्मा जी से मानी गई तथा जिसका प्रयोग भरत मुनि और उनके अनुयायियों ने किया, वह 'मार्गी या शास्त्रीय संगीत' कहलाया।

10.9.2 देशी संगीत :– जिस संगीत की उत्पत्ति भिन्न–भिन्न देशों, वहां के रीति–रिवाज़ों, लोगों की इच्छाओं एवं उनके ज्ञान तथा अनुभव से हुई, वह 'देशी संगीत' कहलाया।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 7

प्र0.1 मार्गी संगीत से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 देशी संगीत का संक्षेप में परिचय दीजिए।

10.10 स्वर एवं स्वर–संवाद के विषय में शारंगदेव का कथन :–

स्वरों के विषय में शारंगदेव ने बताया है कि नाद से श्रुति तथा श्रुति से स्वर उत्पन्न हुए हैं और वे संख्या में सात हैं। शारंगदेव ने सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 11 विकृत स्वर भी माने हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 18 स्वर इनके समय में माने गए।

स्वर संवाद के विषय में शारंगदेव ने वर्णन किया है और कहा है कि षड़ज–पंचम भाव से 12 श्रुतियों के अन्तर पर और षड़ज–मध्यम भाव से 8 श्रुतियों के अन्तर पर स्वरों में संवाद होता है। षड़ज–पंचम और षड़ज–मध्यम, इन दोनों स्वरों की जोड़ियों पर यदि हम गणना करें तो 12 और 8 स्वरों का ही अन्तर आता है।

शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ में स्वर–श्रुति के विषय में तथा श्रुति पर स्वरों की स्थापना का विस्तृत वर्णन किया है। इनहोंने भी भरत के श्लोक के आधार पर ही सात स्वरों को 22 श्रुतियों पर विभाजित किया। शारंगदेव के समय में श्रुतियों की पांच जातियां बताई गई हैं जो कि इस प्रकार हैं –– दीप्ता, आयता, करूणा, मृदु और मध्या।

अपने ग्रन्थ में शारंगदेव ने सारणा प्रक्रिया का भी वर्णन किया है। उन्होंने भरत का ही अनुसरण किया है लेकिन सारणा प्रक्रिया अपने ढंग से की है। उन्होंने इस प्रक्रिया के लिए श्रुति वीणा का प्रयोग किया। उन्होंने भी दो वीणाएं ली, एक चल और एक अचल। शारंगदेव ने इन वीणाओं में 22–22 तार बांधे।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 8

प्र0.1 शारंगदेव ने स्वर–सम्वाद के विषय में क्या कहा, संक्षेप में बताइए।

प्र0.2 शारंगदेव ने स्वर–श्रुति के विषय में क्या कहा, संक्षेप में बताइए।

10.11 शारंगदेव के अनुसार ग्राम भेद :–

शारंगदेव ने भी अपने ग्रन्थ में ग्रामों की चर्चा की है। उन्होंने भी तीन ग्राम माने –षड़ज, मध्यम तथा गान्धार ग्राम। उन्होंने सभी ग्रामों का उल्लेख किया है लेकिन गान्धार ग्राम के विषय में यही वर्णन मिलता है कि यह ग्राम उस समय भी लुप्त हो चुका था अर्थात् उस समय भी दो ही ग्राम प्रचलित थे। ये ग्राम हैं –– षड़ज और मध्यम ग्राम।

इस काल में गायन को चार भागों में बांटा गया था। स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी। जब भी कोई गायक गायन करता था तो उसे इन चार भागों का ध्यान रखना पड़ता था। स्वरों के भी चार प्रकार माने हैं, 4 गीतियां मानी है और यही मूर्च्छनाओं के प्रकार माने है। शारंगदेव ने अपने समय में मूर्च्छनाओं की कुल संख्या 55 बताई है। इसी काल में रागों का वर्गीकरण भी हो गया था और रागों को मार्गी तथा देशी दो भागों में वर्गीकृत किया गया था। मार्गी रागों के अन्तर्गत ग्राम राग, उपराग, शुद्ध राग, भाषा राग, विभाषा राग, और अन्तर्भाषा राग। यह 6 राग बताए गए हैं। देशी रागों के अन्तर्गत रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग बताए गए हैं। उसके अतिरिक्त शारंगदेव ने अपने समय से पूर्व और तत्कालीन समय में प्रचलित रागों का वर्णन किया है और उनकी उत्पत्ति मूर्च्छना से बताई है। रागों का यह वर्गीकरण संगीत रत्नाकर में 'दस विधि राग वर्गीकरण के नाम से प्रचलित है। इस प्रकार शारंगदेव के समय में प्राचीन जाति गायन, ग्राम, मूर्च्छना के साथ –2 रागों के वर्गीकरण का विस्तृत वर्णन मिलता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 9

प्र0.1 शारंगदेव ने ग्राम के विषय में क्या कहा ?

प्र0.2 शारंगदेव काल के संगीत को संक्षेप में बताइए।

10.12 सारांश :–

मतंग मुनि द्वारा रचित ग्रन्थ से पता चलता है कि उनके काल में प्राचीन संगीत से तो लोग परिचित थे ही लेकिन धीरे–धीरे उनके काल में लोग रागों के बारे में भी जानने लग गए थे। जो राग लोगों द्वारा गाए जाते थे उन्हें मतंग ने 'देशी' नाम दिया। कहा जाता है कि देशी रागों के नियमों को समझाने के लिए ही मतंग ने बृहद्देशी ग्रन्थ की रचना की थी और यह बताया था कि चार या पांच स्वरों से कम में राग का निर्माण नहीं हो सकता।

10.13 शब्दकोष :–

1 अनुगामी – आज्ञाकारी

2 बृहद – बहुत बड़ा

3 टीका – व्याख्या या भाषांतरण

10.14 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 मतंग के बृहद्देशी के विषय में संक्षेप में बताएं।

उ0. मतंग मुनि का समय छठी शताब्दी माना जाता है। इन्हें भरत का अनुगामी शास्त्री माना जाता है। संगीत शास्त्रकार के रूप में भरत के बाद मतंग मुनि का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। मतंग के द्वारा रचित ग्रन्थ 'बृहत्देशी' को नाट्य शास्त्र के समान ही एक विशाल ग्रन्थ माना जाता है जिसमें उस समय के संगीत का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान इसे सातवीं शताब्दी, कुछ आठवीं तथा कुछ नवीं शताब्दी का मानते हैं। लेकिन अधिकतर विद्वान इसे 7वीं शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं।

प्र0.2 मतंग काल में स्वर के विषय में क्या कहा गया है ?

उ0. मतंग ने सर्वप्रथम 12 स्वरो का वर्णन किया है। इन 12 स्वरों में मतंग मुनि ने 7 स्वर एक सप्तक के लिए हैं और 5 स्वर दूसरे सप्तक के लिए हैं।

प्र0.3 मतंग ने मूर्छना के कितने प्रकार बताए हैं ?

उ0. इन्होंने मूर्च्छना के दो प्रकार बताए हैं ––

1. **सात स्वरों वाली मूर्च्छना**
2. **बारह स्वरों वाली मूर्च्छना**

प्र0.4 मतंग ने अलग–अलग स्वर संख्या वाली मूर्छना को किस नाम से पुकारा है ?

उ0. इन्होंने चार प्रकार बताए हैं जो कि इस प्रकार हैं ––

1. **पूर्ण :– सात स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना 'पूर्ण' कहलाती है।**
2. **षाड़व :– छः स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना 'षाड़जी' कहलाती है।**
3. **औडव :– पांच स्वरों वाली मूर्च्छना 'औडव' कहलाई।**
4. **साधारण :– काकली और अन्तर स्वरों से गाई जाने वाली मूर्च्छना 'साधारण' कहलाती है।**

प्र0.5 मतंग ने कितनी गीतियां बताई हैं ?

उ0. मतंग ने बृहत्देशी में गीतियों का भी वर्णन किया है और इसके चार प्रकार बताए हैं। ये चार प्रकार हैं–– मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला।

प्र0.6 मतंग ने राग के विषय में क्या कहा ?

उ0. मतंग के समय में सर्वप्रथम संगीत के साहित्य में 'राग' शब्द का प्रयोग किया गया। इन्होंने यह भी वर्णन किया है कि जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति हुई है।

प्र0.7 मतंगकाल में ग्राम के विषय में क्या कहा गया ? संक्षेप में बताइए।

उ0. मतंग काल में ग्रामों का वर्णन भी मिलता है। इन्होंने षड़ज और मध्यम दोनों ग्रामों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त षड़ज ग्राम में षड़ज स्वर से तथा मध्यम ग्राम में मध्यम स्वर से मूर्च्छनाएं प्रारम्भ करने की प्रक्रिया का वर्णन भी किया है। इन्होंने भी प्रत्येक ग्राम से 7–7 मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति बताई और कुल 14 मूर्च्छनाएं बृहत्देशी में वर्णित की।

प्र0.8 मतंग ने मूर्छना के कितने भेद बताए हैं ?

उ0. प्रत्येक मूर्च्छना के चार भेद बताए हैं। जो कि इस प्रकार हैं ––

1 शुद्धा

2 सान्तरा

3 काकली संहिता

4 अंतर काकली संहिता

प्र0.9 बृहद्देशी कब लिखा गया ?

उ0. मतंग मुनि का समय छठी शताब्दी माना जाता है। इन्हें भरत का अनुगामी शास्त्री माना जाता है। संगीत शास्त्रकार के रूप में भरत के बाद मतंग मुनि का नाम श्रद्धा से लिया जाता है। मतंग के द्वारा रचित ग्रन्थ 'बृहत्देशी' को नाट्य शास्त्र के समान ही एक विशाल ग्रन्थ माना जाता है जिसमें उस समय के संगीत का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान इसे सातवीं शताब्दी, कुछ आठवीं तथा कुछ नवीं शताब्दी का मानते हैं। लेकिन अधिकतर विद्वान इसे 7वीं शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं।

प्र0.10 बृहद्देशी को कितने प्रकरणों में विभाजित किया गया ?

उ0. मतंग मुनि द्वारा रचित ग्रन्थ बृहद्देशी एक अद्वितीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें अध्यायों की संख्या नहीं दी गई है। लेकिन प्रकरणों के अनुसार इसको दस प्रकरणों में विभाजित किया गया है। जो कि इस प्रकार है ––

1 देसी लक्षणम्

2 नादोत्पत्ति

3 श्रुति निर्णय

4 स्वर्ण निर्णय

5 33 अलंकार

6 गीतियां

7 जाति

8 राग लक्षणम्

9 भाषा लक्षणम्

10 प्रबन्ध अध्याय

प्र0.11 संगीतरत्नाकर के विषय में संक्षेप में बताइए।

उ0. आचार्य शारंगदेव का समय 12वीं –13वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। 13वीं शताब्दी के लगभग शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ 13वीं शताब्दी की एक महान उपलब्धी मानी जाती है। संगीत रत्नाकर उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों संगीत पद्धतियों का आधार ग्रन्थ माना जाता है। संगीत विद्वानों तथा समीक्षकों ने इस ग्रन्थ को और इसके रचयिता को भारतीय संगीत के विकास के लिए एक अमूल्य देन बताया है। शास्त्र में इस ग्रन्थ का संदर्भ पग–पग पर आता है। जब इस ग्रन्थ की रचना हुई थी तब भारत में संगीत की केवल एक ही पद्धति प्रचार में थी। उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय इस प्रकार की संगीत की कोई दो धाराएं नहीं थी। इसी लिए इस ग्रन्थ को दोनों पद्धतियो में आधार ग्रन्थ के रूप में जाना जाता है।

इस ग्रन्थ की दो टीकाएं लिखी गई हैं। एक सिंहभूपाल तथा दूसरी कल्लीनाथ द्वारा। इस ग्रन्थ में हमें प्राचीन काल के संगीत के साथ–साथ शारंगदेव के समय के संगीत का भी पता चलता है।

प्र0.12 संगीत रत्नाकर के अध्यायों के नाम बताइए।

उ0. शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में 7 अध्यायों का वर्णन किया है। ये अध्याय हैं ––– स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, नृत्याध्याय।

प्र0.13 मार्गी संगीत से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **मार्गी अथवा शास्त्रीय संगीत :–** जिस संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा जी से मानी गई तथा जिसका प्रयोग भरत मुनि और उनके अनुयायियों ने किया, वह 'मार्गी या शास्त्रीय संगीत' कहलाया।

प्र0.14 देशी संगीत का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ0. **देशी संगीत :–** जिस संगीत की उत्पत्ति भिन्न–भिन्न देशों, वहां के रीति–रिवाज़ों, लोगों की इच्छाओं एवं उनके ज्ञान तथा अनुभव से हुई, वह 'देशी संगीत' कहलाया।

प्र0.15 शारंगदेव ने स्वर–संवाद के विषय में क्या कहा, संक्षेप में बताइए।

उ0. स्वर संवाद के विषय में शारंगदेव ने वर्णन किया है और कहा है कि षड़ज–पंचम भाव से 12 श्रुतियों के अन्तर पर और षड़ज–मध्यम भाव से 8 श्रुतियों के अन्तर पर स्वरों में संवाद होता है। षड़ज–पंचम और षड़ज–मध्यम, इन दोनों स्वरों की जोड़ियों पर यदि हम गणना करें तो 12 और 8 स्वरों का ही अन्तर आता है।

प्र0.16 शारंगदेव ने स्वर–श्रुति के विषय में क्या कहा, संक्षेप में बताइए।

उ0. शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ में स्वर–श्रुति के विषय में तथा श्रुति पर स्वरों की स्थापना का विस्तृत वर्णन किया है। इनहोंने भी भरत के श्लोक के आधार पर ही सात स्वरों को 22 श्रुतियों पर विभाजित किया। शारंगदेव के समय में श्रुतियों की पांच जातियां बताई गई हैं जो कि इस प्रकार हैं –– दीप्ता, आयता, करूणा, मृदु और मध्या।

प्र0.17 शारंगदेव ने ग्राम के विषय में क्या कहा ?

उ0. शारंगदेव के अनुसार ग्राम :–

शारंगदेव ने भी अपने ग्रन्थ में ग्रामों की चर्चा की है। उन्होंने भी तीन ग्राम माने –षड़ज, मध्यम तथा गान्धार ग्राम। उन्होंने सभी ग्रामों का उल्लेख किया है लेकिन गान्धार ग्राम के विषय में यही वर्णन मिलता है कि यह ग्राम उस समय भी लुप्त हो चुका था अर्थात् उस समय भी दो ही ग्राम प्रचलित थे। ये ग्राम हैं –– षड़ज और मध्यम ग्राम।

प्र0.18 शारंगदेव काल के संगीत का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

उ0. इस काल में गायन को चार भागों में बांटा गया था। स्थाई, आरोही, अवरोही और संचारी। जब भी काई गायक गायन करता था तो उसे इन चार भागों का ध्यान रखना पड़ता था। स्वरों के भी चार प्रकार माने हैं, 4 गीतियां मानी है और यही मूर्च्छनाओं के प्रकार माने है। शारंगदेव ने अपने समय में मूर्च्छनाओं की कुल संख्या 55 बताई है। इसी काल में रागों का वर्गीकरण भी हो गया था और रागों को मार्गी तथा देशी दो भागों में वर्गीकृत किया गया था। मार्गी रागों के अन्तर्गत ग्राम राग, उपराग, शुद्ध राग, भाषा राग, विभाषा राग, और अन्तर्भाषा राग। यह 6 राग बताए गए हैं। देशी रागों के अन्तर्गत रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग बताए गए हैं। उसके अतिरिक्त शारंगदेव ने अपने समय से पूर्व और तत्कालीन समय में प्रचलित रागों का वर्णन किया है और उनकी उत्पत्ति मूर्च्छना से बताई है। रागों का यह वर्गीकरण संगीत रत्नाकर में 'दस विधि राग वर्गीकरण के नाम से प्रचलित है। इस प्रकार शारंगदेव के समय में प्राचीन जाति गायन, ग्राम, मूर्च्छना के साथ –2 रागों के वर्गीकरण का विस्तृत वर्णन मिलता है।

10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. भारतीय संगीत (एक ऐतिहासिक विश्लेषण) प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, अभिनव पब्लिशिंग हॉउस, इलाहाबाद 2014।

2. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

3. डा0 शरदचन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1968।

4. हरिकृष्ण गोस्वामी, भारतीय संगीत की परम्परा, कनिष्क पब्लिशर, नई दिल्ली 2004।

10.16 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 शारंगदेव के समय के संगीत का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 मतंग काल के संगीत की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

UNIT - IV

LESSON – 11

Elementary study of the Musical Sound and Noise, Vibrations, Frequency, Duration, Pitch, Magnitude and Timber or Quality

नाद

STRUCTURE :

11.1 भूमिका

11.2 उदेश्यनाद की परिभाषा

11.3 नाद की परिभाषा

11.4 नाद के प्रकार

11.4.1 अनहद नाद

11.4.2 आहत नाद

11.5 स्थिर और अस्थिर कम्पन्न

11.5.1 स्थिर कम्पन्न

11.5.2 अस्थिर कम्पन्न

11.6 आन्दोलन

11.6.1 अनुप्रस्थ

11.6.2 अनुदैर्घ्य

11.7 आवृति

11.8 ध्वनि अथवा नाद का वर्गीकरण

11.8.1 तारता

11.8.2 तीव्रता

11.8.3 नाद का गुण या जाति

11.8.4 नाद का काल

11.9 सारांश

11.10 शब्दकोष

11.11 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

11.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11..13 महत्वपूर्ण प्रश्न

11.1 भूमिका :–

ध्वनि वह चीज़ है जिससे हम अपने भावों को व्यक्त कर सकते हैं। यही वह ध्वनि है जो संगीत में प्रयोग होने पर 'नाद' कहलाती है। ध्वनि के दो प्रकार हैं – एक शोर या असांगीतिक ध्वनि और एक सांगीतिक ध्वनि। नाद के दो भाग होते हैं। गुणों के आधार पर नाद को अलग–अलग भागों में बांटा जाता है – तारता, तीव्रता और गुण या जाति, समय या काल। नाद की तारता और तीव्रता, आन्दोलन और आवृति पर निर्भर करती है। नाद का संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

11.2 उदेश्य :–

इस पाठ का उदेश्य नाद के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना है। नाद का संगीत में क्या स्थान है यह इस पाठ के द्वारा हम समझ सकते हैं।

11.3 नाद की परिभाषा :–

नकारं प्राणमामानं दकारमनलं विदुः।

जातःप्राणाग्निसंयोगातेन नादो भिधीयते।।

अर्थात् संगीत रत्नाकर में कहा गया है कि ''नकार'' प्राण–वाचक तथा ''दकार'' अग्नि–वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग से उत्पन्न होता है, उसी को नाद कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं– नाद में दो अक्षर हैं– न और द, जिसमें 'न' प्राण है और 'द' अग्नि, इसलिए प्राण अर्थात् वायु और अग्नि अर्थात् उष्णता, इन दोनों के संयोग से जो शब्द सुनने को मिलता है, उसे ही 'नाद' कहा जाता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 नाद की परिभाषा लिखिए।

11.4 नाद के दो प्रकार माने जाते हैं :–

1. आहत नाद
2. अनहद नाद

11.4.1 अनहद नाद :–

इस नाद को अनाहत नाद के नाम से भी पुकारा जाता है। जो नाद केवल अनुभव से जाना जाता है और जिसके उत्पन्न होने का कोई विषेश कारण न हो, अर्थात् जो स्वयं उत्पन्न होता है, उसे 'अनहद नाद' या 'अनाहत नाद' कहा जाता है। यदि हम दोनों कानों को ज़ोर से बंद कर दें और फिर अनुभव करके सुनें तो हमें ''घन–घन'' या ''सांय–सांय'' की ध्वनि सुनाई देती है, यही स्वयं उत्पन्न नाद या अनहद नाद कहलाता है। इसके बाद नाद उपासना की विधि से गहरे ध्यान की अवस्था में पहुँचने पर सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ने लगता है जो मेघ गर्जन या बाँसुरी के स्वर आदि के समान होता है। इसी अनहद नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि–मुनि करते थे। यह नाद मुक्तिदायक तो है किन्तु रक्तिदायक अर्थात् मनोरंजक दायक नही। इसलिए यह नाद संगीतोपयोगी भी नही है, अर्थात् संगीत से अनहद नाद का कोई सम्बन्ध नही है।

11.4.2 आहत नाद :–

जो कानों द्वारा सुनाई दे और जो दो वस्तुओं के संघर्ष या रगड़ से उत्पन्न होता है, उसे ''आहत नाद'' कहते हैं। इस नाद का संगीत से विशेष सम्बन्ध है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तिदायक माना गया है, लेकिन आहत नाद को भी भवसागर से पार लगाने वाला माना गया है।

पंडित दामोदर ने ''संगीत दर्पण'' में कहा है कि ''आहत नाद व्यवहार में श्रुति, स्वर, ग्राम व मूर्छना आदि से रंजक बन कर भव–भंजक भी बन जाता है।'' उपरोक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि आहत नाद ही संगीत के लिए उपयोगी है। इसी नाद के द्वारा सूर, मीरा इत्यादि ने प्रभु का सान्निध्य प्राप्त किया ओर फिर आगे चलकर अनाहत नाद की उपासना से मुक्ति को प्राप्त किया।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 अनहद नाद से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.2 आहत नाद के विषय में बताइए।

11.5 स्थिर और अस्थिर कम्पन्न :–

सामान्य ध्वनि को दो भागों में बाँटा जाता है– सांगीतिक ध्वनि और असांगीतिक ध्वनि। इन्हें सुरीली और बेसुरी ध्वनि भी कहा जा सकता है।

11.5.1 स्थिर कम्पन्न :–

जब ध्वनि अर्थात् उसके कम्पन्न में स्थिरता अर्थात् नियमितता और व्यवस्था आ जाती है तो ध्वनि मृदुल होकर कानों को प्रिय लगने लगती है। यही स्थिर कम्पन्न कहलाता है। इसी ध्वनि को 'स्वर' कहा जाता है, जिसका प्रयोग संगीत के क्षेत्र में किया जाता है। संगीत के क्षेत्र में प्रयोग होने वाला यह स्थिर कम्पन्न सांगीतिक ध्वनि (Musical Sound) भी कहलाता है।

11.5.2 अस्थिर कम्पन्न :–

जब ध्वनि अर्थात् उसके कम्पन्न नियमित एवं व्यवस्थित नही होते अर्थात् कम्पन्न में अस्थिरता होती है तो वह ध्वनि 'शोर' कहलाती है। यह ध्वनि कानों को प्रिय तो नही लगती लेकिन मनुष्य के अनेक भावों का तथा

भिन्न–भिन्न पदार्थों का बोध करवाती है। यह ध्वनि संगीत के लिए उपयोगी नही होती। अतः वह ध्वनि जिसका कम्पन्न अस्थिर होता है ऐसी ध्वनि को असांगीतिक ध्वनि (Nonmusical Sound) भी कहते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 स्थिर कम्पन्न का उल्लेख कीजिए।

प्र0.2 अस्थिर कम्पन्न से आप क्या समझते हैं ?

11.6 आन्दोलन (Vibration) :–

गति के अनेक प्रकारों में से ही 'आन्दोलन' एक प्रकार है। उत्पादक द्रव्य के आन्दोलन जब हमारे कान से आकर टकराते हैं और हमारे कान के पर्दे को कंपित करते हैं, तब हमारे कान में ध्वनि सुनाई पड़ती है। आन्दोलन की यही प्रक्रिया ध्वनि या नाद कहलाती है। दूसरे शब्दों मे हम यह भी कह सकते हैं कि ––––

"When a body slightly disturbed from the position of rest and left to itself , it vibrates under the restoring force of gravity or elasticity."

अतः किसी द्रव्य को ध्वनि तभी कहेंगे जब वे आन्दोलन द्वारा ग्रहण हो अर्थात् हमें सुनाई दे। इसलिए कहा भी गया है कि –––

"Sound is vibrations applicable to the ear."

आन्दोलन दो प्रकार से हो सकते हैं ––

11.6.1 अनुप्रस्थ (Transverse)

जब किसी वाद्य की तार अपनी आड़ी दिशा में हिलती है तब उसका कम्पन्न अनुप्रस्थ होता है अर्थात् घुड़च और मेरू की दिशा में न हिलकर जब तार अपनी चौड़ाई की दिशा में हिलती है तब अनुप्रस्थ कम्पन्न होते हैं।

11.6.2 अनुदैर्ध्य (Longitudinal)

जब कोई द्रव्य अपनी लम्बाई की दिशा में कम्पित होता है तब उस कम्पन्न को 'अनुदैर्ध्य' कहते हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 आन्दोलन की परिभाषा बताइए।

प्र0.2 आन्दोलन कितने प्रकार का होता है, वर्णन कीजिए।

11.7 आवृति (**Friquency**) :–

“It is a number of waves which moves across a point in one second is called “Frequency”

कहने का तात्पर्य यह है कि जितना आघात तेज़ होगा उतनी ही आवृति अधिक होगी और नाद ऊँचा होगा और जितना आघात नर्म होगा उतनी आवृति कम होगी और नाद नीचा होगा।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 आवृति से आप क्या समझते हैं ?

11.8 ध्वनि अथवा नाद का वर्गीकरण :–

ध्वनि अथवा नाद का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से तीन गुणों के आधार पर किया गया है–

1) तारता

2) तीव्रता

3) गुण

और चौथा है नाद की जाति।

11.8.1 तारता (**Pitch**)

स्त्री या बच्चे चाहे धीमे बोलें या चिल्लाकर परन्तु उनकी आवाज़ का महीनपन नही जाता। इसी प्रकार पुरूष धीमे बोलें या चिल्लाएं तो भी उनकी आवाज़ का मोटापन बना रहता है। जिस आवाज़ को हम महीन कहते

हैं, संगीत की भाषा में उसे 'ऊँचा स्वर' कहा जाता है और मोटी आवाज़ को 'नीचा स्वर' कहते हैं। नाद की यह ऊँची–नीची स्थिति ही **"तारता"** कहलाती है। इसे **नाद का ऊँचा–नीचापन** भी कहा जाता है। तारता के आधार पर ही हम आवाज़ या स्वर को पहचान पाते हैं। घोड़े की हिनहिनाहट, चिड़ियों की चहचहाहट, रेल की सीटी या बम के धमाके इत्यादि को ध्वनि के इसी तारत्व–गुण से पहचाना जाता है। संगीत के संदर्भ में यदि किसी व्यक्ति को तारत्व का बोध न हो और उससे सरगम गाने के लिए कहा जाए तो वह एक ही स्वर पर सातों स्वरों को बोल देता है। उसे नीचे स्वर और ऊँचे स्वर में कोई भेद प्रतीत नही होता। लेकिन जैसे–जैसे तारता का ज्ञान बढ़ता जाता है तो उसके गले से अलग–अलग सप्तकों के नीचे और ऊँचे स्वर निकलने लगते हैं। तारता केवल कानों के अनुभव की ही चीज़ नही है अपितु जिस वस्तु के कम्पन्न से स्वर निकलता है, तारता उसका मौलिक धर्म है जो स्वरोत्पादक वस्तु की आवृति पर निर्भर करती है। आवृति के अधिक होने पर ऊँचा स्वर और आवृति कम होने पर नीचा स्वर निकलता है। एक उदाहरण के लिए यदि हम बिजली के पंखे को धीमी गति से चलाएं तो आवृति के अनुसार और तारत्व के आधार पर पंखे की ध्वनि अथवा स्वर धीमा या नीचा होगा और यदि उसी पंखे को अधिक तेज़ गति से चलाएं तो वस्तु की आवृति और तारता के आधार पर पंखे की ध्वनि या स्वर ऊँचा अथवा तेज़ सुनाई देगा।

आन्दोलन के आधार पर भी हम तारता को पहचान सकते हैं। आन्दोलन का अर्थ है कि जब किसी वस्तु से ध्वनि उत्पन्न होती है तो वह वस्तु झूले की भान्ति इधर–उधर बड़ी तीव्र गति से हिलने लगती है। ज्यों–ज्यों आन्दोलन संख्या बढ़ती है, नाद ऊँचा होता जाता है। जैसे उदाहरण के लिए हम कहते हैं कि 'सा' स्वर से 'रे' स्वर का नाद ऊँचा है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'रे' की कम्पन्न संख्या अर्थात् आन्दोलन संख्या 'सा' की आन्दोलन संख्या से अधिक है। इसी प्रकार ध्वनि तरंग की लम्बाई बढ़ते जाने पर नाद नीचा और कम होते जाने पर नाद ऊँचा होता जाता है। नाद की तारता को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि ज्यों–ज्यों ध्वनि उत्पन्न करने वाले तार की लम्बाई को हम कम करते जाएंगे, त्यों–त्यों नाद ऊँचा होता जाएगा और ज्यों–ज्यों लम्बाई को बढ़ाते जाएंगे, नाद क्रमशः नीचा होता जाएगा।

11.8.2 तीव्रता (Loudness or Magnitude)

नाद की तीव्रता को **छोटा–बड़ा नाद** कह कर भी पुकारा जाता है। जो आवाज़ या ध्वनि धीरे सुनाई दे उसे 'छोटा नाद' कहते हैं और जो आवाज़ ज़ोर से सुनाई दे, उसे 'बड़ा नाद' कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी घण्टे पर अपने नाखुन से प्रहार किया जाए तो ध्वनि बहुत हल्की अर्थात् कम उत्पन्न होगी और वह थोड़ी दूर तक ही सुनाई देगी । लेकिन इसके विपरीत यदि उस पर हथोड़े से प्रहार किया जाए तो ध्वनि ज़ोर की उत्पन्न होगी और वह अधिक दूर तक सुनाई देगी। इस प्रकार यहाँ धीरे से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'छोटा नाद' और ज़ोर से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'बड़ा नाद' कहेंगे।

11.8.3 नाद का गुण अथवा जाति (Timber)

जब हम विभिन्न ध्वनियों को अलग से पहचान लेते हैं तब उसे **नाद की जाति अथवा गुण** कहा जाता है। नाद की जाति और गुण से यह पता चलता है कि जो आवाज़ सुनाई दे रही है वह किसी मनुष्य की है, पशु–पक्षी की है अथवा किसी वाद्य की है। जैसे उदाहरण के लिए एक नाद या ध्वनि सारंगी, सितार या बेला वाद्य से उत्पन्न हो रहा है और दूसरा नाद किसी गायक के गले से तो हम नाद प्रकट होने की क्रिया को देखे बिना ही यह बता देंगे कि उनमें से कौन सा नाद वाद्य का है और कौन सा गले का। इसे ही नाद की जाति अथवा गुण कहा जाता है।

नाद की जाति के भिन्न होने का वैज्ञानिक कारण, किसी वस्तु से उत्पन्न उप–स्वरों की तीव्रता तथा तारत्व पर निर्भर करता है। प्रत्येक नाद में अन्य अनेक नादों का मिश्रण होता है और जब नाद उत्पन्न होता है तो उसकी मौलिक आवृति में अन्य नादों की आवृतियाँ क्रमशः दोगुणी, तीनगुणी, चारगुणी, पाँचगुणी, छःगुणी बढ़ती जाती हैं। नाद के जो उपस्वर होते हैं उन्हें Overtones भी कहा जाता है। इन्हीं उपस्वरों की तीव्रता के कारण नाद में जाति या गुणभेद की उत्पत्ति होती है अर्थात् किस नाद में किन उपस्वरों की कितनी तीव्रता है उसी आधार पर एक नाद दूसरे नाद से भिन्न प्रतीत होता है। इसीलिए एक वाद्य अथवा कंठ से उत्पन्न होने वाले उप–स्वर, दूसरे वाद्य अथवा कंठ से उत्पन्न होने वाले उप–स्वरों से सदा भिन्न होते हैं। यही कारण है कि हम एक वाद्य अथवा कंठ की ध्वनि से, दूसरे वाद्य अथवा कंठ कि ध्वनि को अलग पहचान लेते हैं।

11.8.4 नाद का समय या काल (Duration) :–

कोई भी नाद जितनी देर तक सुनाई देता है, उसे नाद का काल या समय कहते हैं। स्वरों को संगीत में लय के साथ रखने के लिए नाद के काल की आवश्यकता होती है। विद्वानों ने इस तथ्य का पता लगाया है कि जिन लोगों के कान संगीत सुनने के लिए अभ्यस्त होते हैं उन्हें किसी एक नाद को सुनने के बाद दूसरे नाद को सुनने में (.01sec) .01सैकेण्ड लगते हैं और जिन लोगों के कान संगीत सुनने के आदि नहीं होते उन्हें किसी अन्य नाद को सुनने में दो सेकेण्ड (2sec) का समय लगता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी कही जाती है कि कान की बनावट पर भी नाद के काल का यह अन्तर निर्भर करता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 6

प्र0.1 नाद को कुल कितने वर्गों में बांटा गया है ?

प्र0.2 नाद के समय से आप क्या समझते हैं ?

प्र0.3 नाद की तीव्रता का उल्लेख कीजिए।

11.9 सारांश :–

नाद संगीत का एक मुख्य आधार है। यदि नाद नहीं होगा तो संगीत भी सम्भव नही है। नाद ध्वनि का संगीत में प्रयोग किया जाता है। ये वे ध्वनियां होती हैं जो कर्णप्रिय होती हैं और जिन्हें सुनने का मन करता है तथा जो हमें आनन्द देती हैं, ऐसी ध्वनि को ही नाद कह कर पुकारा जाता है। नाद के अलग–अलग भेद और वर्ग है जिनके आधार पर हम नाद को पहचान पाते हैं।

11.10 शब्दकोष :–

1 रक्तिदायक – रंजकता देने वाला

2 सानिध्य – किसी के समीप या घनिष्टता में रहना

3 भवभंजक – भंग करने वाला या ध्वंस करने वाला

4 आड़ी – टेड़ी

5 अनुप्रस्थ कम्पन्न – कम्पन्न की दिशा में तरंग का उठना

11.11 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 नाद की परिभाषा लिखिए।

उ0. **नाद की परिभाषा :–**

नकारं प्राणमामानं दकारमनलं विदुः।

जातःप्राणाग्निसंयोगातेन नादो भिधीयते।।

अर्थात् संगीत रत्नाकर में कहा गया है कि ''नकार'' प्राण–वाचक तथा ''दकार'' अग्नि–वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के योग से उत्पन्न होता है, उसी को नाद कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार भी समझ

सकते हैं– नाद में दो अक्षर हैं– न और द, जिसमें 'न' प्राण है और 'द' अग्नि, इसलिए प्राण अर्थात् वायु और अग्नि अर्थात् उष्णता, इन दोनों के संयोग से जो शब्द सुनने को मिलता है, उसे ही 'नाद' कहा जाता है।

प्र0.2 अनहद नाद से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **अनहद नाद :–**

इस नाद को अनाहत नाद के नाम से भी पुकारा जाता है। जो नाद केवल अनुभव से जाना जाता है और जिसके उत्पन्न होने का कोई विषेश कारण न हो, अर्थात् जो स्वयं उत्पन्न होता है, उसे 'अनहद नाद' या 'अनाहत नाद' कहा जाता है। यदि हम दोनों कानों को ज़ोर से बंद कर दें और फिर अनुभव करके सुनें तो हमें ''घन–घन'' या ''सांय–सांय'' की ध्वनि सुनाई देती है, यही स्वयं उत्पन्न नाद या अनहद नाद कहलाता है। इसके बाद नाद उपासना की विधि से गहरे ध्यान की अवस्था में पहुँचने पर सूक्ष्म नाद सुनाई पड़ने लगता है जो मेघ गर्जन या बाँसुरी के स्वर आदि के समान होता है। इसी अनहद नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि–मुनि करते थे। यह नाद मुक्तिदायक तो है किन्तु रक्तिदायक अर्थात् मनोरंजक दायक नही। इसलिए यह नाद संगीतोपयोगी भी नही है, अर्थात् संगीत से अनहद नाद का कोई सम्बन्ध नही है।

प्र0.3 आहत नाद के विषय में बताइए।

आहत नाद :–

जो कानों द्वारा सुनाई दे और जो दो वस्तुओं के संघर्ष या रगड़ से उत्पन्न होता है, उसे ''आहत नाद'' कहते हैं। इस नाद का संगीत से विशेष सम्बन्ध है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तिदायक माना गया है, लेकिन आहत नाद को भी भवसागर से पार लगाने वाला माना गया है।

पंडित दामोदर ने ''संगीत दर्पण'' में कहा है कि ''आहत नाद व्यवहार में श्रुति, स्वर, ग्राम व मूर्छना आदि से रंजक बन कर भव–भंजक भी बन जाता है।'' उपरोक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि आहत नाद ही संगीत के लिए उपयोगी है। इसी नाद के द्वारा सूर, मीरा इत्यादि ने प्रभु का सान्निध्य प्राप्त किया ओर फिर आगे चलकर अनाहत नाद की उपासना से मुक्ति को प्राप्त किया।

प्र0.4 स्थिर कम्पन्न का उल्लेख कीजिए।

उ0. **स्थिर कम्पन्नः–**

जब ध्वनि अर्थात् उसके कम्पन्न में स्थिरता अर्थात् नियमितता और व्यवस्था आ जाती है तो ध्वनि मृदुल होकर कानों को प्रिय लगने लगती है। यही स्थिर कम्पन्न कहलाता है। इसी ध्वनि को 'स्वर' कहा जाता है,

जिसका प्रयोग संगीत के क्षेत्र में किया जाता है। संगीत के क्षेत्र में प्रयोग होने वाला यह स्थिर कम्पन्न सांगीतिक ध्वनि **(Musical Sound)** भी कहलाता है।

प्र0.5 अस्थिर कम्पन्न से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **अस्थिर कम्पन्नः–**

जब ध्वनि अर्थात् उसके कम्पन्न नियमित एवं व्यवस्थित नही होते अर्थात् कम्पन्न में अस्थिरता होती है तो वह ध्वनि 'षोर' कहलाती है। यह ध्वनि कानों को प्रिय तो नही लगती लेकिन मनुश्य के अनेक भावों का तथा भिन्न–भिन्न पदार्थों का बोध करवाती है। यह ध्वनि संगीत के लिए उपयोगी नही होती। अतः वह ध्वनि जिसका कम्पन्न अस्थिर होता है ऐसी ध्वनि को असांगीतिक ध्वनि **(Non musical Sound)** भी कहते हैं।

प्र0.6 आन्दोलन की परिभाषा बताइए।

उ0. **आन्दोलन (Vibration) :–**

गति के अनेक प्रकारों में से ही 'आन्दोलन' एक प्रकार है। उत्पादक द्रव्य के आन्दोलन जब हमारे कान से आकर टकराते हैं और हमारे कान के पर्दे को कंपित करते हैं, तब हमारे कान में ध्वनि सुनाई पड़ती है। आन्दोलन की यही प्रक्रिया ध्वनि या नाद कहलाती है। दूसरे शब्दों मे ंहम यह भी कह सकते हैं कि ––––

''When a body slightly disturbed from the position of rest and left to itself , it vibrates under the restoring force of gravity or elasticity."

अतः किसी द्रव्य को ध्वनि तभी कहेंगे जब वे आन्दोलन द्वारा ग्रहण हो अर्थात् हमें सुनाई दे। इसलिए कहा भी गया है कि –––

"Sound is vibrations applicable to the ear."

प्र0.7 आन्दोलन कितने प्रकार का होता है, वर्णन कीजिए।

उ0. आन्दोलन दो प्रकार से हो सकते हैं ––

1 अनुप्रस्थ (Transverse)

जब किसी वाद्य की तार अपनी आड़ी दिशा में हिलती है तब उसका कम्पन्न अनुप्रस्थ होता है अर्थात् घुड़च और मेरू की दिशा में न हिलकर जब तार अपनी चौड़ाई की दिशा में हिलती है तब अनुप्रस्थ कम्पन्न होते हैं।

2 अनुदैर्ध्य (**Longitudinal**)

जब कोई द्रव्य अपनी लम्बाई की दिशा में कम्पित होता है तब उस कम्पन्न को 'अनुदैर्ध्य' कहते हैं।

प्र0.8 आवृति से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **आवृति (Friquency) :–**

"It is a number of waves which moves across a point in one second is called "Frequency"

कहने का तात्पर्य यह है कि जितना आघात तेज़ होगा उतनी ही आवृति अधिक होगी और नाद ऊँचा होगा और जितना आघात नर्म होगा उतनी आवृति कम होगी और नाद नीचा होगा।

प्र0.9 नाद को कुल कितने वर्गों में बांटा गया है ?

उ0. **ध्वनि अथवा नाद का वर्गीकरण :–**

ध्वनि अथवा नाद का वर्गीकरण वैज्ञानिक ढंग से तीन गुणों के आधार पर किया गया है–

1) तारता

2) तीव्रता

3) गुण

और चौथा है नाद की जाति।

प्र0.10 नाद के समय से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **नाद का समय या काल (Duration) :–**

कोई भी नाद जितनी देर तक सुनाई देता है, उसे नाद का काल या समय कहते हैं। स्वरों को संगीत में लय के साथ रखने के लिए नाद के काल की आवश्यकता होती है। विद्वानों ने इस तथ्य का पता लगाया है

कि जिन लोगों के कान संगीत सुनने के लिए अभ्यस्त होते हैं उन्हें किसी एक नाद को सुनने के बाद दूसरे नाद को सुनने में (.01sec) .01सैकेण्ड लगते हैं और जिन लोगों के कान संगीत सुनने के आदि नहीं होते उन्हें किसी अन्य नाद को सुनने में दो सेकेण्ड (2sec) का समय लगता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी कही जाती है कि कान की बनावट पर भी नाद के काल का यह अन्तर निर्भर करता है।

प्र0.11 नाद की तीव्रता का उल्लेख कीजिए।

उ0. तीव्रता (Loudness or Magnitude)

नाद की तीव्रता को **छोटा–बड़ा नाद** कह कर भी पुकारा जाता है। जो आवाज़ या ध्वनि धीरे सुनाई दे उसे 'छोटा नाद' कहते हैं और जो आवाज़ ज़ोर से सुनाई दे, उसे 'बड़ा नाद' कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी घण्टे पर अपने नाखुन से प्रहार किया जाए तो ध्वनि बहुत हल्की अर्थात् कम उत्पन्न होगी और वह थोड़ी दूर तक ही सुनाई देगी । लेकिन इसके विपरीत यदि उस पर हथोड़े से प्रहार किया जाए तो ध्वनि ज़ोर की उत्पन्न होगी और वह अधिक दूर तक सुनाई देगी। इस प्रकार यहाँ धीरे से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'छोटा नाद' और ज़ोर से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'बड़ा नाद' कहेंगे।

11.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. संगीत शास्त्र प्रवीण
2. सुर संगम, डा0 विजय प्रवीण, 2004, चंपक प्रिंटर्ज़, फाज़िल्का।
3. निबन्ध संगीत, डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. संगीत सारंग, डा0 विजय प्रवीण, 2014, मॉडर्न पब्लिशर, रेलवे रोड, जालन्धर।

11.13 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 नाद क्या है और नाद के कितने भेद हैं ?

प्र0.2 नाद को कितने वर्गों में बांटा गया है ?

LESSON - 12

Defination of Rasa and its Varieties according to

Bharat and Abhinav Gupta

रस की क्या परिभाषा है और भरत तथा अभिनव गुप्त का रस सिद्धांत क्या है

STRUCTURE :

12.1 भूमिका

12.2 उदेश्यरस की परिभाषा

12.3 रस की परिभाषा भरत मुनि द्वारा रस की परिभाषा

12.3.1 भरत मुनि द्वारा रस की परिभाषा संगीत विशारद में संगीत की परिभाषा

12.3..2 संगीत विशारद में संगीत की परिभाषा रस शब्द की व्युत्पति

12.4 रस शब्द की व्युत्पति

12.4.1 रस की व्याख्या

12.4.2 भरत एवं अन्य विद्वानों के अनुसार रस की व्याख्या

12.5 रस की अवस्थाएं

12.5.1 विभाव

12.5.2 संचारी भाव

12.5.3 अनुभाव

12.5.4 स्थाई भाव

12.6 भरत की रस व्याख्या एवं संख्या

12.7 अभिनव गुप्त का रस सिद्धांत

12.8 सारांश

12.9 शब्दकोष

12.10 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12..12 महत्वपूर्ण प्रश्न

12.1 भूमिका :–

रस एक विशेष चेतना है जो रजोगुण एवं तमोगुण के दब जाने पर होती है। मनुष्य उस चेतना के क्षणों में व्यक्तिगत चिन्ता, क्रोध, शोक इत्यादि से मुक्ति पा लेता है और उसमें सत्य का उद्भव होता है। भावों, विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। मानव जाति के अन्तःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के सतोगुण प्रधान परमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों अथवा शास्त्रकारों ने 'रस' कहा है। संगीत में भी रस को आनन्द का स्त्रोत कहा गया है। जिसकी उत्पत्ति स्वर, शब्द, लय एवं ताल से होती है। रस कौमुदाकार श्री कंठ ने काव्यगीत एवं नाटय को रस का उदगम माना है।

12.2 उदेश्य :–

रस की क्या परिभाषा है, क्या प्रकार हैं, रस से उत्पन्न भाव या संवेदनाएं कैसी होती हैं। भरत तथा अभिनव गुप्त रस के विषय में क्या कहते हैं, यह जानना ही इस पाठ का उदेश्य है।

12.3 रस की परिभाषा :–

जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता को उत्पन्न करती है तब उसे रस कहा जाता है। रस का शाब्दिक अर्थ होता है 'आनन्द'। संगीत में स्वर ताल एवं लय के माध्यम से जो आनन्द की अनुभूति होती है उसे 'रस' कहा जाता है। सभी कलाओं में व्याप्त होने के कारण रस को

रसानुभूति एवं आनन्द की अनुभूति करवाने वाला भी माना गया है। संगीत में सुन्दरता की वृद्धि के लिए रस को एक आवश्यक तत्व माना गया है।

जैसा कि रस का अर्थ हम आनन्द से लेते हैं अतः संगीत को सुनने से जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे रस कहा जाता है। संगीत में रस का स्थान वही है जो कि शरीर में आत्मा का होता है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर शिथिल हो जाता है उसी प्रकार रस के बिना संगीत का कोई अस्तित्व नहीं रहता। यही कारण है कि रस को संगीत की आत्मा या प्राण तत्व भी कहा जाता है।

शास्त्रज्ञों ने रस को अलग–अलग रूप में परिभाषित किया है। जो कि इस प्रकार है ––––

12.3.1 आचार्य भरतमुनि द्वारा रस की परिभाषा :–

''विभानुभावा व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः''

अर्थात ''जब विभाव, अनुभाव और संचारी का आपस में संयोग होता है, तब रस की निष्पत्ति होती है।'' सबसे पहले आचार्य भरतमुनि ने ही रस को परिभाषित किया था।

12.3.2 संगीत विशारद में रस की परिभाषा :–

संगीत विशारद में रस की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''मानव जाति के अन्तःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के सतोगुण प्रधान परमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों अथवा शास्त्रकारों ने 'रस' कहा है।''

डा0 नगेन्द्र ने अपनी पुस्तक रस सिद्धांत में कहा है, ''विविध भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। यह महर्षि भरत का रस सम्बन्धी विविध भावों और अभिनयों से व्यंजित भाव की कलात्मक अभिव्यंजना या भाव मूलक सौन्दर्य ही 'रस' है।''

''संगीत के क्षेत्र में हमारी इन्द्रियों द्वारा प्राप्त आनन्द का नाम ही 'रस' है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 रस की परिभाषा लिखिए।

प्र0.2 संगीत विशारद में रस की क्या परिभाषा दी गई है ?

प्र0.3 आचार्य भरत द्वारा रस की परिभाषा बताइए।

12.4 रस शब्द की व्युत्पत्ति :–

'रस' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'रस' धातु में 'अच्' प्रत्यय के योग से हुई है अर्थात् 'रस्+अच्='रस'। जिसका शाब्दिक अर्थ है ''आनन्द देने वाली वस्तु से प्राप्त होने वाला सुख या स्वाद।'' कहने का तात्पर्य यही है कि किसी भी सांगीतिक रचना को सुनने से जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे ''रस'' कहते हैं।

12.4.1 रस की व्याख्या :–

जैसा कि ज्ञात ही है कि सभी कलाओं में रस विद्यमान होता है। साहित्य में जब हम रस के विषय में अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि साहित्य में नौ प्रकार के रस माने गए है। इसके अतिरिक्त हम कहीं भी रस का वर्णन सुनते हैं तो इनकी संख्या अधिकतर नौ (9) ही मानते हैं और इन्हें 'नव रस' कहकर भी पुकारा जाता है। ये नव रस इस प्रकार हैं –––

श्रृंगार, हास्य, करूण, वीर, रौद्र, भयानक, विभत्स, अदभुत एवं शान्त रस।

12.4.2 भरत एवं अन्य विद्वानों के अनुसार रस व्याख्या :–

महर्षि भरत के अनुसार इन नव रसों में से चार प्रधान रस माने गए हैं। जैसे –– श्रृंगार, रौद्र, वीर और विभत्स रस। इन्हीं में से क्रमशः हास्य, करूण अदभुत और भयानक रस की उत्पत्ति होती है अर्थात् श्रृंगार से हास्य, रौद्र से करूण, वीर से अदभुत और विभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। भरत ने नाट्य शास्त्र में रसों का वर्णन किया है और कहा है कि नाट्य में आठ रसों का अविर्भाव होता है तथा इन आठ रसों के अविर्भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से इसकी उत्पत्ति होती है। भरत के अनुसार संगीत में केवल चार रसों का प्रयोग होता है। ये रस हैं –– श्रृंगार, वीर, करूण और शान्त रस और इन्हीं चार रसों में सभी रसों का समावेश माना गया है।

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने संगीत के सातों स्वरों से भिन्न–भिन्न रसों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। भरत ने नाट्य शास्त्र में इस विषय पर एक श्लोक भी लिखा है –––

'' सा, रे विरेद भूते रौद्रे, ध विभत्से भयानके।

कायोग, नि तुः करूणाहास्यश्रृंगार भोर्मपो।।''

अर्थात् षड़ज और ऋषभ से वीर, रौद्र और अदभुत रस की उत्पत्ति होती है। धैवत से विभत्स और भयानक रस उत्पन्न होते हैं। गान्धार और निषाद से करूण रस उत्पन्न होता है तथा मध्यम व पंचम स्वर से हास्य व श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार स्वरों से रस सृष्टि के आधार पर पं0 भातखण्डे ने अपनी पुस्तक ''हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति'' में स्वरों के अनुसार रागों के जो तीन वर्ग नियत किए हैं, उन तीन वर्गों में पं0 भातखण्डे ने रसों का समावेश बताया है। जैसे 'रे ध' कोमल स्वर वाले राग जिन्हें संन्धि प्रकाश राग भी कहा जाता है। इन रागों के गायन–वादन से शान्त व करूण रस उत्पन्न होते हैं। 'रे ध' शुद्ध स्वर वाले रागों में श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है और 'ग नि' कोमल स्वर वाले रागों में वीर रस की उत्पत्ति होती है।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से एक ही रस की सृष्टि बताई है, लेकिन वास्तव में यदि देखा जाए तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना सम्भव नही है। जैसे उदाहरण के लिए षड़ज स्वर को वीर रस प्रधान बताया गया है और पंचम को श्रृंगार रस का स्वर माना गया है तो हमारे सभी रागों में प्रायः षड़ज व पंचम स्वर होता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सभी राग वीर रस या श्रृंगार रस प्रधान होने चाहिए जबकि वस्तुतः ऐसा नहीं होता। भिन्न–भिन्न रागों से अलग–अलग रसों की सृष्टि होती है। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोई एक विशिष्ट स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों सम्वादी, विवादी और अनुवादी स्वरों के सम्पर्क में रह कर ही किसी अन्य रस की सृष्टि कर सकता है।

इसी प्रकार शास्त्रीय संगीत में स्वर योजना के अनुसार किसी निश्चित ऋतु में योग्य वातावरण को देख कर श्रोताओं के मनोभावों को समझते हुए कोई राग किसी गायक द्वारा गाया जाता है और उस राग का काव्य भी उसके अनुकूल हो तो विशिष्ट रस की उत्पत्ति होती है। इसके विपरीत यदि कोई गायक वीर रस की स्वरावली में शांत रस का गीत गाने लगे तो कभी भी रस की उत्पत्ति नही होगी। जहाँ केवल स्वरों के द्वारा ही रस की सृष्टि करनी होती है वहाँ गीत के शब्दों को छोड़ कर केवल स्वर लहरी के द्वारा ही रस उत्पन्न हो सकता है।

दूसरी ओर शब्दों और स्वरों के मिलन से ही एक गीत बनता है। यदि शब्दों में स्वर नही होगा तो वह केवल मात्र निरस शब्द रचना ही कहलाएगी और जब शब्दों में स्वर मिल जाता है तभी आवश्यक रस की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार संगीत में केवल एक स्वर के द्वारा ही भिन्न–भिन्न स्वरों को उत्पन्न नही किया जा सकता जबकि साहित्य में केवल एक शब्द के द्वारा ही सभी रसों को उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जैसे हम यदि 'आओ' शब्द को लें और उसे हम करूण रस के स्वर में प्रयोग करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि कोई सहायता के लिए पुकार रहा है, जिससे कि करूण रस की सृष्टि होगी। यदि इसी 'आओ' शब्द को हम श्रृंगार रस के स्वरों में प्रयोग करें तो ऐसा प्रतीत होगा मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है और इस प्रकार 'आओ' शब्द से श्रृंगार रस की उत्पत्ति होगी। इसी प्रकार यदि इस 'आओ' शब्द को विभत्स या रौद्र के स्वरों में पुकारा जाए तो ऐसा प्रतीत होगा मानो कोई लड़ने के लिए अपने दुश्मन को पुकार रहा हो और उसी समय इस 'आओ' शब्द से वीर रस की उत्पत्ति होगी। इन सभी उदाहरणों से यह भली–भान्ति प्रकट होता है कि एक ही

शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर भेद के कारण होती है। अतः रस उत्पत्ति का मूल कारण स्वर माना गया।

यूं तो काव्य द्वारा भी रोना, क्रोध, भय, आश्चर्य, हास्य इत्यादि भावों की सृष्टि होती है लेकिन यह सृष्टि तभी होती है जबकि उस काव्य या कविता का उच्चारण भाव के अनुसार हो और भाव के अनुसार उच्चारण करने के लिए स्वरों का कुछ न कुछ अस्तित्व अवश्य रहता है। वास्तव में देखा जाए तो प्रत्येक उच्चारण का सम्बन्ध नाद, स्वर और लय से है। संगीत रत्नाकर के अनुसार आचार्य शारंगदेव ने कहा है "जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है तब वह मन को प्रेरित करता है, मन देह में स्थित अग्नि को प्रेरित करता है, अग्नि वायु का चलन करती है तब ब्रह्म ग्रन्थी से वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभी, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख, इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद उत्पन्न करती है।" इन नादों का सम्बन्ध स्वर से है और स्वरों की सहायता से अन्त में भाव तथा रस की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार स्वरों द्वारा रस की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार नृत्य तथा ताल के द्वारा भी हमें विभिन्न प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। एक सफल नर्तक अपने नृत्य में नृत्य करते समय विभिन्न प्रकार के भावों द्वारा रस की उत्पत्ति करने में सफल होता है। जैसे उदाहरण के लिए हम कुछ विशेष प्रकार के नृत्य देखते हैं तो उनसे अलग–अलग प्रकार के रसों की उत्पत्ति होती है। जैसे ताण्डव नृत्य से वीर और रौद्र रस उत्पन्न होता है। लास्य नृत्य से श्रृंगार रस तथा भिन्न–भिन्न नृत्यों की विभिन्न भाव–भंगिमाओं द्वारा श्रृंगार, हास्य करूण और शांत रसों की उत्पत्ति होती है। नृत्य में अधिकतर न स्वर होता है न शब्द लेकिन फिर भी रस सृष्टि होती है और यही, नृत्य तथा अभिनय कला की विशेषता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 रस शब्द की उत्पत्ति बताइए।

प्र0.2 भरत ने रस की व्याख्या कैसे की है ?

12.5 रस की अवस्थाएं :–

शास्त्रों में रस के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है। शास्त्रों के पठन–पाठन से यह पता चलता है कि रस संगीत में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। रस और भाव के आधार पर ही संगीत आधारित है। भाव के आधार पर ही विभिन्न रसों की सृष्टि होती है और ये भाव चार प्रकार के हैं ––– विभाव, संचारी भाव, अनुभाव तथा स्थाई भाव।

शास्त्रकारों ने कुल मिलाकर नव रस अर्थात् नौ रस माने हैं जो कि इन भावों के आधार पर उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दो में यह भी कहा जा सकता है कि संचारी भाव तथा विभाव के माध्यम से स्थाई भाव की पक्वावस्था को रस कहते हैं। मनुष्य के अन्तःकरण में करूण, श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, अदभुत, विभत्स, भयानक तथा शांत यह नौ प्रकार के रस सदा विद्यमान रहते हैं। जब इनमें से किसी एक रस का उदय होता है तो शेष आठ रस तिरोभूत हो जाते हैं। किसी घटना विशेष को स्मरण करने या देखने से तत् सम्बन्धी एक रस का उदय होता है। रस का अर्थ है आनन्द जो ब्रह्म या आत्मा का स्वरूप माना जाता है। रस की चार अवस्थाएं या भाव होते हैं। विभाव, संचारी भाव, अनुभाव, स्थाई भाव। इन चार भावों का वर्णन इस प्रकार है –––

12.5.1 विभाव :–

विभाव के दो भेद होते हैं। उद्विपन और आलम्बन। जिसमें रस उत्पन्न होता है उसे आलम्बन कहते हैं और जिसके द्वारा रस उत्पन्न या उद्विप्त होता है उसे उद्विपन कहते हैं। जैसे श्रृंगार रस का उद्विपन है शीतल, मंद तथा सुगन्ध युक्त पवन, उद्यान, चाँदनी रात तथा सुन्दर स्त्री–पुरूष इत्यादि। यह सभी चीज़ें रस को तीव्रतम् करती हैं। इसलिए यह उद्विपन कहलाते हैं।

12.5.2 संचारी भाव :–

मूर्छा, प्रलाप इत्यादि संचारी भाव कहलाते हैं। यह भाव उत्पन्न या उद्विप्त होकर थोड़े ही समय में समाप्त हो जाते हैं। यह भाव संचारी भाव कहलाते हैं।

12.5.3 अनुभाव :–

शारीरिक परिवर्तन को अनुभाव कहते हैं। जब रस परिपक्व होता है तो मनुष्य के शरीर में कुछ परिवर्तन होते हैं। ऐसे भाव को अनुभाव कहते हैं। उदाहरण के लिए –– जैसे किसी मनुष्य को यदि क्रोध आए तो उसका चेहरा अथवा मुख लाल हो जाता है या वह क्रोधित होकर अपने दांत पीसने लगता है। इसी प्रकार के भाव से होने वाले शारीरिक परिवर्तन को अनुभाव कहते हैं।

12.5.4 स्थाई भाव :–

जो भाव आदि से लेकर अंत तक बना रहे उसे स्थाई भाव कहते हैं और प्रत्येक रस का स्थाई भाव होता है। जैसे वीर रस का स्थाई भाव है उत्साह, रौद्र का क्रोध, अदभुत का आश्चर्य, करूण का शोक, श्रृंगार का रति, हास्य का हास, विभत्स का इच्छा करना और भयानक का भय तथा शांत रस का निर्वेद (Normal) स्थाई भाव होता है।

इसी प्रकार सप्तक के सात स्वरों से रसों की उत्पत्ति होती है। विभिन्न स्वरों से विभिन्न रसों की उत्पत्ति मानी गई है। संगीत में केवल चार रसों का प्रयोग होता है और वे रस है –– श्रृंगार रस, करूण रस, वीर रस तथा शांत रस। इन चारों रसों का संगीत में विशेष स्थान रहता है। यह चारों रस संगीत के प्रभाव को बढ़ा देते हैं। संगीत में यदि वीर रस का प्रयोग किया जाए और युद्ध आदि में जब संगीत का प्रयोग होता था तो उस समय भी संगीत की ऐसी धुनें जो कि वीर रस का भाव लिए होती थीं, वीर योद्धाओं के लिए बजाई जाती थीं जिससे वे उत्साहित होते थे। इसी प्रकार यदि कलाकारों की कला में दक्षता हो तो मधुर स्वरों के प्रभाव से एक कलाकार में इतनी क्षमता होती है कि वह श्रोता की आँखों में आँसू तक ला सकता है और वह स्थिति करूण रस के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती है। इसी प्रकार जब कलाकार कोई लोक धुन या शास्त्रीय संगीत में श्रृंगारिक कविताओं में निबद्ध गीत गाता है तो श्रोता झूमने लगते हैं। उनके मन में श्रृंगार रस उत्पन्न होता है, जिससे प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार यदि कोई दक्ष कलाकार या साधक संगीत के द्वारा ईश्वर की आराधना करता है और उसके वह मधुर स्वर श्रोताओं तक पहुँचते हैं तो अनायास ही उनके मन में शांत रस का संचार होने लगता है, मन एकाग्रचित हो जाता है और इस प्रकार के संगीत को सुनते हुए वह अपने को अन्य कार्यों से मुक्त पाता है। यही कारण था कि हमारे प्राचीन समय के ऋषि–मुनि संगीत के द्वारा रस के प्रभाव से ईश्वर की उपासना एकाग्रचित हो कर करते थे। अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रस संगीत में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 रस की अवस्था पर प्रकाश डालिए।

प्र0.2 अनुभाव और स्थाई भाव से आप क्या समझते हैं ?

12.6 भरत के अनुसार रस व्याख्या एवं संख्या :–

महर्षि भरत ने नाटय शास्त्र में कहा है कि रस सम्बन्धी विविध भावों और अभिनयों से व्यंजित भाव की कलात्मक अभिव्यंजना या भाव मूलक सौंदर्य ही 'रस' है। उनका कहना है कि भावों, विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। यह महर्षि भरत का रस सम्बन्धी व्याख्यात सूत्र है।

भरत लिखित नाटय शास्त्र में निम्न श्लोक से रसों की संख्या का पता चलता है ––

श्रृंगारराद्धी भवेद्वास्यों रौद्राच्च करूणों रसः।

वीराचचैवाद् भुतोत्पति वीभत्साच्च भयानकः।।

श्रृंगाररानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः।

रौद्रस्यैव च यत्कर्म्म से ज्ञेयः करूणों रसः।।

वीरस्यापि च यत्कर्म्म सोअद्भुतः परिकीर्तितः।

वीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेयः तु भयानकः।।

अर्थात् प्रधान रस चार हैं —— श्रृंगार, रौद्र, वीर एवं विभत्स। इन्हीं के क्रमशः हास्य, करूण, अदभुत एवं भयानक रसों की उत्पत्ति होती है। श्रृंगार की अनुकृति हास्य, रौद्र का कार्य करूण, वीर का कार्य अद्भुत एवं विभत्स का दर्शन भयानक रस है। भरत ने नाटय शास्त्र में आठ रसों का वर्णन किया है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 भरत की रस संख्या पर प्रकाश डालिए।

12.7 अभिनव गुप्त का रस सिद्धांत :–

अभिनव गुप्त के अनुसार रसों की संख्या यूं तो नौ है और इन्होंने भी रसों के स्थाई भाव पर प्रकाश डाला है। इन्होंने शांत रस का स्थाईभाव तन्मयता या तन्मयवाद को माना है। अभिनव गुप्त के अनुसार एक ही रस है। आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने ग्रंथ 'अभिनव भारती' में शांत रस को केवल एक रस माना है। वे भगवान के दर्शन तथा मोक्ष की प्राप्ति इसी एक शांत रस द्वारा निर्धारित करते हैं। अभिनव गुप्त ने शांत रस की सत्ता को भली प्रकार प्रतिष्ठित किया है। इन्होंने तत्व ज्ञान, वैराग्य, निर्वेध अथवा श्रम को शांत रस का स्थाई भाव माना है। इन्होंने आत्म ज्ञान को स्थाई भाव बताया जो श्रम का ज्ञान जन्य वैराग्य का ही रूप है। वास्तव में शांत रस के स्थाई भाव का निर्वेध या वैराग्य से अभिप्राय है। इन्होंने शान्त रस को सर्वश्रेष्ठ रस कहा है। इनका मानना था कि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य अध्यात्मिक सिद्धि है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 5

प्र0.1 अभिनव गुप्त के रस सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

12.8 सारांश :–

मानव जाति के अन्तःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के सतोगुण प्रधान परम उत्कर्ष को शास्त्रज्ञों अथवा शास्त्रकारों ने 'रस' कहा है। हम ये भी कह सकते हैं कि जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता को उत्पन्न करती है तब उसे रस कहा जाता है। रस नौ प्रकार के बताए गए हैं। रस के विषय पर भरत से लेकर उनके बाद के लगभग सभी ग्रन्थकारों द्वारा चर्चा की गई है। सभी ने रस के विषय पर अपने–अपने विचार व्यक्त किए हैं और रस की संख्या भी अपने–अपने हिसाब से वर्णित की है।

12.9 शब्दकोष :–

1 व्यभिचारी – बुरा आचरण

2 शिथिल – ढीला या थकामांदा

3 निष्पत्ति – उत्पति

4 व्यंजित – अभिव्यक्त या चिन्हित

5 अविर्भाव – प्रकट करना

6 रौद्र – भयानक

7 विभत्स – घृणा या भयानक

8 प्रेरित – प्रेरणा

9 तिरोभूत – अदृष्ट

10 तीव्रतम् – अत्यधिक तेज़

11 उद्विपन – प्रज्जवलित करना या उत्पन्न करना।

12 निर्वेद – शान्त या वेदना रहित

13 दक्षता – किसी कार्य को बिना समय और उर्जा बर्बाद किए सफलता पूर्वक करने में सक्षम होना

12 अभिव्यंजना – रूप विधान या मन के भावों का शब्दों में चित्रण करना

12.10 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर :–

प्र0.1 रस शब्द की उत्पत्ति के विषय में बताइए।

उ0. 'रस' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'रस' धातु में 'अच्' प्रत्यय के योग से हुई है अर्थात् 'रस्+अच्='रस'। जिसका शाब्दिक अर्थ है ''आनन्द देने वाली वस्तु से प्राप्त होने वाला सुख या स्वाद।'' कहने का तात्पर्य यही है कि किसी भी सांगीतिक रचना को सुनने से जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे ''रस'' कहते हैं।

जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता को उत्पन्न करती है तब उसे रस कहा जाता है। रस का शाब्दिक अर्थ होता है 'आनन्द'। संगीत में स्वर ताल एवं लय के माध्यम से जो आनन्द की अनुभूति होती है उसे 'रस' कहा जाता है। सभी कलाओं में व्याप्त होने के कारण रस को रसानुभूति एवं आनन्द की अनुभूति करवाने वाला भी माना गया है। संगीत में सुन्दरता की वृद्धि के लिए रस को एक आवश्यक तत्व माना गया है।

जैसा कि रस का अर्थ हम आनन्द से लेते हैं अतः संगीत को सुनने से जो आनन्द की अनुभूति होती है, उसे रस कहा जाता है। संगीत में रस का स्थान वही है जो कि शरीर में आत्मा का होता है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर शिथिल हो जाता है उसी प्रकार रस के बिना संगीत का कोई अस्तित्व नहीं रहता। यही कारण है कि रस को संगीत की आत्मा या प्राण तत्व भी कहा जाता है।

प्र0.2 भरत ने रस की व्याख्या कैसे की है ?

उ0. महर्षि भरत के अनुसार इन नव रसों में से चार प्रधान रस माने गए हैं। जैसे –– श्रृंगार, रौद्र, वीर और विभत्स रस। इन्हीं में से क्रमशः हास्य, करूण अदभुत और भयानक रस की उत्पत्ति होती है अर्थात् श्रृंगार से हास्य, रौद्र से करूण, वीर से अदभुत और विभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। भरत ने नाट्य शास्त्र में रसों का वर्णन किया है और कहा है कि नाट्य में आठ रसों का अविर्भाव होता है तथा इन आठ रसों के अविर्भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से इसकी उत्पत्ति होती है। भरत के अनुसार संगीत में केवल चार रसों का प्रयोग होता है। ये रस हैं –– श्रृंगार, वीर, करूण और शान्त रस और इन्हीं चार रसों में सभी रसों का समावेश माना गया है।

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने संगीत के सातों स्वरों से भिन्न–भिन्न रसों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। भरत ने नाट्य शास्त्र में इस विषय पर एक श्लोक भी लिखा है –––

'' सा, रे विरेद भूते रौद्रे, ध विभत्से भयानके।

कायोग, नि तुः करूणाहास्यश्रृंगार भोर्मपो।।''

अर्थात् षड़ज और ऋषभ से वीर, रौद्र और अदभुत रस की उत्पत्ति होती है। धैवत से विभत्स और भयानक रस उत्पन्न होते हैं। गान्धार और निषाद से करूण रस उत्पन्न होता है तथा मध्यम व पंचम स्वर से हास्य व श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

प्र0.3 रस की अवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ0. **रस की अवस्थाएं :–** शास्त्रों में रस के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है। शास्त्रों के पठन–पाठन से यह पता चलता है कि रस संगीत में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। रस और भाव के आधार पर ही संगीत आधारित है। भाव के आधार पर ही विभिन्न रसों की सृष्टि होती है और ये भाव चार प्रकार के हैं ––– विभाव, संचारी भाव, अनुभाव तथा स्थाई भाव।

शास्त्रकारों ने कुल मिलाकर नव रस अर्थात् नौ रस माने हैं जो कि इन भावों के आधार पर उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दो में यह भी कहा जा सकता है कि संचारी भाव तथा विभाव के माध्यम से स्थाई भाव की पक्वावस्था को रस कहते हैं। मनुष्य के अन्तःकरण में करूण, श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, अदभुत, विभत्स, भयानक तथा शांत यह नौ प्रकार के रस सदा विद्यमान रहते हैं। जब इनमें से किसी एक रस का उदय होता है तो शेष आठ रस तिरोभूत हो जाते हैं। किसी घटना विशेष को स्मरण करने या देखने से तत् सम्बन्धी एक रस का उदय होता है। रस का अर्थ है आनन्द जो ब्रह्म या आत्मा का स्वरूप माना जाता है। रस की चार अवस्थाएं या भाव होते हैं। विभाव, संचारी भाव, अनुभाव, स्थाई भाव।

प्र0.4 अनुभाव और स्थाई भाव से आप क्या समझते हैं ?

उ0. **अनुभाव :–**

शारीरिक परिवर्तन को अनुभाव कहते हैं। जब रस परिपक्व होता है तो मनुष्य के शरीर में कुछ परिवर्तन होते हैं। ऐसे भाव को अनुभाव कहते हैं। उदाहरण के लिए –– जैसे किसी मनुष्य को यदि क्रोध आए तो उसका चेहरा अथवा मुख लाल हो जाता है या वह क्रोधित होकर अपने दांत पीसने लगता है। इसी प्रकार के भाव से होने वाले शारीरिक परिवर्तन को अनुभाव कहते हैं।

स्थाई भाव :– जो भाव आदि से लेकर अंत तक बना रहे उसे स्थाई भाव कहते हैं और प्रत्येक रस का स्थाई भाव होता है। जैसे वीर रस का स्थाई भाव है उत्साह, रौद्र का क्रोध, अदभुत का आश्चर्य, करूण का शोक, श्रृंगार का रति, हास्य का हास, विभत्स का इच्छा करना और भयानक का भय तथा शांत रस का निर्वेद (Normal) स्थाई भाव होता है।

प्र0.5 भरत की रस संख्या पर प्रकाश डालिए।

उ0. महर्षि भरत ने नाटय शास्त्र में कहा है कि रस सम्बन्धी विविध भावों और अभिनयों से व्यंजित भाव की कलात्मक अभिव्यंजना या भाव मूलक सौंदर्य ही 'रस' है। उनका कहना है कि भावों, विभावों, अनुभावों और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। यह महर्षि भरत का रस सम्बन्धी व्याख्यात सूत्र है।

भरत लिखित नाटय शास्त्र में निम्न श्लोक से रसों की संख्या का पता चलता है ––

श्रृंगारराद्‌धी भवेद्वास्यों रौद्राच्च करूणों रसः।

वीराचचैवाद् भुतोत्पति वीभत्साच्च भयानकः।।

श्रृंगाररानुकृतिर्या तु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः।

रौद्रस्यैव च यत्कर्म्म से ज्ञेयः करूणों रसः।।

वीरस्यापि च यत्कर्म्म सोअद्‌भुतः परिकीर्तितः।

वीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेयः तु भयानकः।।

अर्थात् प्रधान रस चार हैं –– श्रृंगार, रौद्र, वीर एवं विभत्स। इन्हीं के क्रमशः हास्य, करूण, अदभुत एवं भयानक रसों की उत्पत्ति होती है। श्रृंगार की अनुकृति हास्य, रौद्र का कार्य करूण, वीर का कार्य अद्‌भुत एवं विभत्स का दर्शन भयानक रस है। भरत ने नाटय शास्त्र में आठ रसों का वर्णन किया है।

प्र0.6 अभिनव गुप्त के रस सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

उ0. अभिनव गुप्त का रस सिद्धांत :–

अभिनव गुप्त के अनुसार रसों की संख्या यूं तो नौ है और इन्होंने भी रसों के स्थाई भाव पर प्रकाश डाला है। इन्होंने शांत रस का स्थाईभाव तन्मयता या तन्मयवाद को माना है। अभिनव गुप्त के अनुसार एक ही रस है। आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने ग्रंथ 'अभिनव भारती' में शांत रस को केवल एक रस माना है। वे भगवान के दर्शन तथा मोक्ष की प्राप्ति इसी एक शांत रस द्वारा निर्धारित करते हैं। अभिनव गुप्त ने शांत रस की सत्ता को भली प्रकार प्रतिष्ठित किया है। इन्होंने तत्व ज्ञान, वैराग्य, निर्वेध अथवा श्रम को शांत रस का स्थाई भाव माना है। इन्होंने आत्म ज्ञान को स्थाई भाव बताया जो श्रम का ज्ञान जन्य वैराग्य का ही रूप है। वास्तव में शांत रस के स्थाई भाव का निर्वेध या वैराग्य से अभिप्राय है। इन्होंने शान्त रस को सर्वश्रेष्ठ रस कहा है। इनका मानना था कि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य अध्यात्मिक सिद्धि है।

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. प्रो0 स्वतंत्र शर्मा, सौन्दर्य, रस एवं संगीत, प्रतिभा प्रकाशन 29/5 शक्ति नगर, दिल्ली।

2. डा0 नगेन्द्र, रस सिद्धांत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1980।

3. निबन्ध संगीत, डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस।

4. संगीत सारंग, डा0 विजय प्रवीण, 2014, मॉडर्न पब्लिशर, रेलवे रोड, जालन्धर।

12.12 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 रस से आप क्या समझते हैं ? वर्णन कीजिए।

प्र0.2 भरत एवं अभिनव गुप्त के रस सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

LESSON – 13

Detailed Study of Jatis and their Lakshans

जाति और उसके लक्षण

STRUCTURE :

13.1 भूमिका

13.2 उदेश्य

13.3 जाति की परिभाषा

13.3.1 भरत मुनि के द्वारा जाति की परिभाषा

13.3.2 शारंगदेव के अनुसार जाति की परिभाषा

13.3.2.1 षड़ज ग्राम की जातियां

13.3.2.2 मध्यम ग्राम की जातियां

13.4 जाति के लक्षण

13.4.1 ग्रह

13.4.2 अंश

13.4.3 न्यास

13.4.4 अपन्यास

13.4.5 अल्पत्व–बहुत्व

13.4.6 औड़त्व–षाड़त्व

13.4.7 मन्द्र और तार

13.5 शारंगदेव के जाति लक्षण

13.5.1 सन्यास

13.5.2 विन्यास

13.5.3 अन्तरमार्ग

13.6 जातियों के 18 प्रकार

13.6.1 षाड़जी

13.6.2 आर्षभी

13.6.3 गान्धारी

13.6.4 मध्यमा

13.6.5 पंचमी

13.6.6 धैवती

13.6.7 नैषादी

13.6.8 षड़ज कैशिकी

13.6.9 षड़जोदीच्यवती

13.6.10 षड़ज मध्यमा

13.6.11 गान्धारो दीच्यवती

13.6.12 रक्त गान्धारी

13.6.13 कैशिकी

13.6.14 मध्यमोदीच्यवा

13.6.15 कार्मारवी

13.6.16 गान्धार पंचमी

13.6.17 आन्ध्री

13.6.18 नन्दयन्ती

13.7 सारांश

13.8 शब्दकोष

13.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

13.1 भूमिका :–

भरत के नाटय शास्त्र में सर्वप्रथम जाति की व्याख्या मिलती है। राग के प्रादुर्भाव के पूर्व जाति गान की परम्परा प्रचलित थी जो वैदिक परम्परा का ही एक भेद था। जाति के विषय में हमारे बहुत से संगीत शास्त्रज्ञों ने अपनी–अपनी परिभाषा दी है। जिस प्रकार आज राग और उसके दस लक्षण माने जाते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में जाति गान के निर्माण में दस लक्षणों का होना आवश्यक समझा जाता था। जाति के दस लक्षणों का यही प्रयोजन होता था कि जाति में किस स्वर की प्रमुखता होगी, जाति का आरम्भ व अन्त किस स्वर से होगा, कोन सा स्वर दुर्बल और कौन सा साधारण होगा, तार और मन्द्र का किस प्रकार का प्रयोग होगा, कौन से स्वर वर्जित या अवर्जित होंगे, इन्हीं जाति के नियमों को जाति के दस लक्षण कहा जाता था।

13.2 उदेश्य :–

जाति गायन की क्या परिभाषा है, प्राचीनकाल में जाति गायन का क्या रूप था, इसके क्या लक्षण थे इत्यादि का विस्तृत अध्ययन करना ही इस पाठ का उदेश्य है। जाति के विषय में सरलता से विद्यार्थियों को समझाना ही इस पाठ का मुख्य उदेश्य है।

13.3 जाति की परिभाषा :–

13.3.1 भरत के अनुसार जाति परिभाषा :–

भरत काल में जाति गायन का प्रचार था और जातियां कुल 18 थीं। आचार्य कैलाश चन्द्रदेव बृहस्पति द्वारा 'भरत का संगीत सिद्धांत' नामक पुस्तक में जाति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, 'रन्जन और अदृष्ट अभ्युदय को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर 'जाति' कहे जाते हैं।' दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि स्वर की विशिष्ट रचना जिसके दस लक्षण –– ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, औडत्व, षाडत्व, मन्द्र और तार माने जाते हैं, जाति कहलाती थीं।

'श्रुति ग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः।'

–– भरत

अर्थात् श्रुति, ग्रह, स्वर आदि के समूह से जाति की रचना होती है।

13.3.2 शारंगदेव की जाति परिभाषा :–

शारंगदेव ने जाति के तेरह लक्षण माने हैं और सन्यास, विन्यास और अन्तरमार्ग ये तीन लक्षण जोड़ दिये हैं। जातियां कुल 18 मानी गई हैं –– षाड़जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती, नैषादी, षड़जोदीच्यवती, षड़जकैशिकी, षड़जमध्यमा, गान्धारोदीच्यवती, रक्तगान्धारी, गान्धारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, नन्दयन्ती, कार्मारवी, आंध्री तथा कैशिकी। इनमें से 7 जातियां षड़ज से और ग्यारह जातियां मध्यम ग्राम से उत्पन्न मानी गई हैं।

13.3.2.1 षड़ज ग्राम की जातियां ––

षड़जी, आर्षभी, धैवती और निषादी शुद्ध हैं तथा षड़जकैशिकी, षड़जमध्यमा, षड़जोदीच्यवती विकृत हैं।

13.3.2.2 मध्यम ग्राम की जातियां ––

गान्धारी, मध्यमा और पंचमी शुद्ध हैं।

गान्धारीदीच्यवा, रक्तगान्धारी, कैशिकी, मध्यमोदीच्यवा, कार्मारवी, गान्धारपंचमी, आंध्री और नन्दयन्ती विकृत हैं।

इन 18 जातियों में से मध्यमोदीच्यवा, षड़जकैशिकी, कार्मारवी, गान्धारपंचमी में 7 स्वर होते हैं। षाड़जी, आंध्री, गान्धारोदीच्यवा और नन्दयन्ती में 6 स्वर होते हैं और शेष 10 जातियों में 5 स्वर होते हैं। कभी–कभी औडव जातियां षाड़व तथा षाड़व जातियां औडव होती हैं।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 1

प्र0.1 शारंगदेव ने जाति की क्या परिभाषा दी है ?

प्र0.2 षड़ज ग्राम और मध्यम ग्राम की जातियां बताइए।

13.4 जाति के लक्षण :–

13.4.1 ग्रह :– जिस स्वर से जाति गायन प्रारम्भ किया जाता था, उसे ग्रह स्वर कहते थे। अंश स्वर ही ग्रह स्वर होते थे। उदाहरण के लिए जैसे नन्दयन्ती में अंश स्वर पंचम है तो इसमें ग्रह स्वर भी पंचम ही होगा।

13.4.2 अंश :– जाति के प्रमुख स्वर अंश स्वर कहलाते थे। आजकल किसी राग के प्रमुख स्वर को वादी कहते हैं। प्रत्येक राग में वादी स्वर एक ही होता है, लेकिन जाति में एक या एक से अधिक अंश स्वर होते थे। उदाहरण के लिए षाड़जी में पांच अंश स्वर थे – सा, ग, म, प और ध।

13.4.3 न्यास :– जिस स्वर पर कोई गीत या वाद्य रचना समाप्त होती थी, उसे न्यास स्वर कहते थे। एक जाति में एक से अधिक न्यास स्वर हो सकते थे और एक स्वर कई जातियों में न्यास स्वर हो सकता था। उदाहरण के लिए षड़जमध्यमा में सा और म दोनों पर न्यास किया जाता था और मध्यम स्वर पर मध्यमा, षड़जमध्यमा, षड़जोदीच्यवा, गान्धारोदीच्यवा और मध्यमोदीच्यवा में न्यास किया जाता था।

13.4.4 अपन्यास :– जिस स्वर पर गीत या वाद्य रचना का मध्य भाग समाप्त होता था, उसे अपन्यास स्वर कहते थे। एक जाति में एक से अधिक अपन्यास स्वर हो सकते थे और एक स्वर कई जातियों में अपन्यास स्वर हो सकता था। जैसे – निषाद स्वर आठ जातियों में अपन्यास स्वर माना जाता था।

13.4.5 अल्पत्व–बहुत्व :– जिन स्वरों का प्रयोग किसी जाति में अल्प होता था उनका स्थान अल्पत्व माना जाता था। अल्पत्व के दो प्रकार माने जाते थे – लंघन और अनाभ्यास तथा जिनका अधिक प्रयोग होता था उसे बहुत्व माना जाता था। इसी प्रकार बहुत्व के दो प्रकार माने जाते थे – अलंघन और अभ्यास।

13.4.6 औड़त्व–षाड़त्व :– किसी जाति में पांच स्वर प्रयोग किए जाने पर औड़त्व तथा छः स्वर प्रयोग किए जाने पर उसका स्वरूप षाड़त्व होता था। चार जातियां हमेशा सम्पूर्ण होती थीं और शेष 14 जातियों के 47 षाड़व प्रकार सम्भव थे तथा 30 औड़व प्रकार सम्भव थे।

13.4.7 मन्द्र और तार :– प्रत्येक जाति की एक निश्चित सीमा होती थी जिसके अन्दर गायक या वादक को रहना पड़ता था। मन्द्र स्थान में अंश, न्यास तथा अपन्यास तक जा सकते थे। इसी प्रकार तार स्थान में अंश स्वर से चौथे, पाँचवें या सातवें स्वर तक जा सकते थे। भरत ने अति तार स्थान का प्रयोग नही किया है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 2

प्र0.1 जाति के न्यास और अपन्यास लक्षण के विषय में बताइए।

प्र0.2 औड़त्व–षाड़त्व तथा मन्द्र और तार का वर्णन कीजिए।

13.5 शारंगदेव के जाति लक्षण

शारंगदेव ने इन लक्षणों के अतिरिक्त तीन लक्षण और माने हैं :–

13.5.1 सन्यास :– जिस स्वर पर गीत का प्रथम भाग समाप्त होता था उसका वादी या अनुवादी स्वर सन्यास कहलाता था।

13.5.2 विन्यास :– गीत का अन्तिम स्वर विन्यास स्वर कहलाता था।

13.5.3 अन्तरमार्ग :– जाति के दस लक्षणों का पालन करते हुए तिरोभाव–अविर्भाव दिखाना अन्तरमार्ग कहलाता था।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 3

प्र0.1 शारंगदेव के जाति लक्षणों का वर्णन कीजिए।

13.6 जातियों के अठारह प्रकार :–

13.6.1. षाड़जी :– यह सात शुद्ध जातियों में से एक है। इसमें रिषभ और निषाद के अतिरिक्त पांचों स्वर अंश स्वर तथा गान्धार और पंचम अपन्यास स्वर माने जाते हैं। इसमें पंचपाणी ताल प्रयोग किया जाता है। सा–ग और सा–ध की संगति इस जाति में दिखाई जाती है।

13.6.2. आर्षभी :– यह षड़ज ग्राम से उत्पन्न मानी गई शुद्ध जाति है। इसमें रिषभ, धैवत तथा निषाद अंश और अपन्यास दोनों हैं। रिषभ न्यास स्वर भी है, पंचम अल्प है। इसमें चच्चत्पुट ताल प्रयोग किया जाता है। इसमें ग–नि की संगति दिखाई जाती है।

13.6.3. गान्धारी :– मध्यम ग्राम से उत्पन्न इसमें सा, ग, म, प व नि स्वर अंश माने जाते हैं। गान्धार न्यास स्वर है। षड़ज एवं पंचम अपन्यास स्वर माने जाते हैं। इसमें रे–धा की संगति दिखाई जाती है। इसका ताल चच्चत्पुट है।

13.6.4. मध्यमा :– मध्यम ग्राम से उत्पन्न माने गए इस जाति में सा, रे, म, प, और ध अंश और अपन्यास स्वर हैं। मध्यम पर न्यास किया जाता है। षड़ज और मध्यम का बहुत्व है तथा गान्धार और निषाद का अल्पत्व है। ताल चच्चत्पुट है।

13.6.5. पंचमी :– मध्यम ग्राम से उत्पन्न मानी गई पंचमी जाति शुद्ध है। इसमें रिषभ और पंचम अंश स्वर तथा रिषभ, पंचम और निषाद अपन्यास स्वर माने जाते हैं। इसमें सा ग प स्वर दुर्बल है। इसमें रे–ग और ग–नि स्वरों की संगति दिखाई जाती है।

13.6.6. धैवती :– यह षड़ज ग्राम जन्य एक जाति है। इसमें धैवत न्यास स्वर, रिषभ–धैवत अंश स्वर और रिषभ, मध्यम और धैवत अपन्यास स्वर हैं। इसका ताल चच्चतपुट है।

13.6.7. नैषादी :– इसे षड़ज ग्राम से उत्पन्न माना गया है। इसमें रे, ग, नि अंश और अपन्यास स्वर हैं। नि पर न्यास किया जाता है।

13.6.8. षड़ज कैशिकी :– इसमें सा–ग–प अंश और ग्रह स्वर हैं। गान्धार न्यास स्वर है। रे–ध स्वर अल्प हैं। ताल चच्चतपुट हैं।

13.6.9. षड़जोदीच्यवती :– यह षड़ज ग्राम की विकृत जाति है। इसमें सा–म–ध और नि अंश और ग्रह स्वर हैं। न्यास स्वर मध्यम है। सा–ध अपन्यास स्वर हैं।

13.6.10. षड़ज मध्यमा :– यह षड़ज ग्राम की विकृत जाति है। इसमें प्रयोग किए जाने वाले सभी स्वर अंश और अपन्यास स्वर हैं।

13.6.11. गान्धारोदीच्यवती :– यह मध्यम ग्राम की विकृत जाति है। इसमें सा–म स्वर अंश होते हैं।

13.6.12. रक्तगान्धारी :– इसमें धैवत और निषाद बहुत्व है। सा–ग की संगति इसमें दिखाई जाती है। मध्यम अपन्यास स्वर है।

13.6.13. कैशिकी :– यह मध्यम ग्राम की विकृत जाति है। इसमें रिषभ के अतिरिक्त सभी स्वर अंश और अपन्यास माने जाते हैं। गान्धार और निषाद न्यास स्वर हैं। रिषभ दुर्बल है।

13.6.14. मध्यमोदीच्यवा :– यह एक विकृत जाति है। इसमें अंश स्वर पंचम है। ताल चच्चत्पुट है।

13.6.15. कार्मारवी :– इसमें रे, प , ध, नि अंश और अपन्यास स्वर हैं। गान्धार का बहुत्व है। ताल चच्चत्पुट है।

13.6.16. गान्धार पंचमी :– इसमें पंचम अंश स्वर और पंचम–रिषभ अपन्यास स्वर है। इसमें गान्धारी और पंचमी के समान स्वरों का प्रयोग साथ–साथ होता है।

13.6.17. आन्ध्री :– इसमें रिषभ, गान्धार, पंचम और निषाद स्वर अंश व अपन्यास हैं। न्यास स्वर गान्धार है। रे–ग और ध–नि की संगति दिखाई जाती है।

13.6.18. नन्दयन्ती :– इसमें पंचम स्वर सदा अंश होता है। अपन्यास स्वर मध्यम और पंचम है।

इन 18 जातियों में से सात जातियों के नाम सात स्वरों पर है। वे दो प्रकार की हैं – शुद्ध तथा विकृत। शुद्ध जातियां वे हैं जिनमें कोई स्वर कम नही होता है। न्यास स्वर के अतिरिक्त एक, दो या अनेक लक्षणों में विकार होने पर ये जातियां विकृत कहलाती हैं। फलतः जो शुद्ध हैं वही विकृत भी होने लग जाती हैं। शुद्ध जाति में मन्द्र स्वर पर नियम पूर्वक न्यास होता है परन्तु विकृत जातियों में यह नियम शिथिल भी हो जाता है। इन जातियों का निर्माण परस्पर संयोग से होता है।

स्वयं परीक्षण प्रश्नावली – 4

प्र0.1 षाड़जी और आर्षभी जाति का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 षड़जोदीच्यवती और गान्धारोदीच्यवती के विषय में बताइए।

13.7 सारांश :–

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक संगीत की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचार में रही जैसे कि ग्राम–मूर्च्छना पद्धति, मेल राग पद्धति, राग–रागिनी पद्धति, रागांग पद्धति और थाट राग पद्धति।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक किसी न किसी रूप में संगीत की पद्धतियाँ प्रचार में रहीं हैं। शास्त्रों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कालानुसार संगीत एवं संगीत पद्धतियों में अन्तर आता गया। सर्वप्रथम प्राचीनकाल में जाति गायन होता था। ये समस्त गायन ग्राम तथा मूर्च्छनाओं के आधार पर होता था।

मध्यकाल में जहाँ एक ओर ''राग–रागिनी'' वर्गीकरण जोरों पर था वहाँ दूसरी ओर मेल राग वर्गीकरण भी शुरू हो गया था। मध्य काल में ही यह पद्धति प्रचलन में आई। इस पद्धति के अन्तर्गत मेल से रागों की उत्पत्ति का सिद्धांत स्वीकार किया गया। ऐसा लगता है कि मेल पद्धति का प्रचलन प्राचीन मूर्च्छना पद्धति के आधार पर किया गया और इसके नियमों में यह स्वीकार किया गया कि मेल सम्पूर्ण होना चाहिए और स्वर क्रमानुसार होने चाहिए।

13.8 शब्दकोष :–

1. सन्निवेश – प्रवेश करना

2. अभ्युदय – उन्नति या वृद्धि

3. दुर्बल – कमज़ोर

4. प्रयोजन – अभिप्राय या मतलब

13.9 स्वयं परीक्षण प्रश्न–उत्तर

प्र0.1 शारंगदेव ने जाति की क्या परिभाषा दी है ?

उ0. **शारंगदेव की जाति परिभाषा :–**

शारंगदेव ने जाति के तेरह लक्षण माने हैं और सन्यास, विन्यास और अन्तरमार्ग ये तीन लक्षण जोड़ दिये हैं। जातियां कुल 18 मानी गई हैं –– षाड़जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती, नैषादी, षड़जोदीच्यवती, षड़जकैशिकी, षड़जमध्यमा, गान्धारोदीच्यवती, रक्तगान्धारी, गान्धारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, नन्दयन्ती, कार्मारवी, आंध्री तथा कैशिकी। इनमें से 7 जातियां षड़ज से और ग्यारह जातियां मध्यम ग्राम से उत्पन्न मानी गई हैं।

प्र0.2 षड़ज ग्राम और मध्यम ग्राम की जातियां बताइए।

उ0. **षड़ज ग्राम की जातियां —** षड़जी, आर्षभी, धैवती और निषादी शुद्ध हैं तथा षड़जकैशिकी, षड़जमध्यमा, षड़जोदीच्यवती विकृत हैं।

मध्यम ग्राम की जातियां — गान्धारी, मध्यमा और पंचमी शुद्ध हैं। गान्धारीदीच्यवा, रक्तगान्धारी, कैशिकी, मध्यमोदीच्यवा, कार्मारवी, गान्धारपंचमी, आंध्री और नन्दयन्ती विकृत हैं।

इन 18 जातियों में से मध्यमोदीच्यवा, षड़जकैशिकी, कार्मारवी, गान्धारपंचमी में 7 स्वर होते हैं। षाड़जी, आंध्री, गान्धारोदीच्यवा और नन्दयन्ती में 6 स्वर होते हैं और शेष 10 जातियों में 5 स्वर होते हैं। कभी–कभी औडव जातियां षाड़व तथा षाड़व जातियां औडव होती हैं।

प्र0.3 जाति के न्यास और अपन्यास लक्षण के विषय में बताइए।

उ0. **न्यास :–** जिस स्वर पर कोई गीत या वाद्य रचना समाप्त होती थी, उसे न्यास स्वर कहते थे। एक जाति में एक से अधिक न्यास स्वर हो सकते थे और एक स्वर कई जातियों में न्यास स्वर हो सकता था। उदाहरण के लिए षड़जमध्यमा में सा और म दोनों पर न्यास किया जाता था और मध्यम स्वर पर मध्यमा, षड़जमध्यमा, षड़जोदीच्यवा, गान्धारोदीच्यवा और मध्यमोदीच्यवा में न्यास किया जाता था।

अपन्यास :– जिस स्वर पर गीत या वाद्य रचना का मध्य भाग समाप्त होता था, उसे अपन्यास स्वर कहते थे। एक जाति में एक से अधिक अपन्यास स्वर हो सकते थे और एक स्वर कई जातियों में अपन्यास स्वर हो सकता था। जैसे – निषाद स्वर आठ जातियों में अपन्यास स्वर माना जाता था।

प्र0.4 औड़त्व–षाड़त्व तथा मन्द्र और तार का वर्णन कीजिए।

उ0. **औड़त्व–षाड़त्व :–** किसी जाति में पांच स्वर प्रयोग किए जाने पर औड़त्व तथा छः स्वर प्रयोग किए जाने पर उसका स्वरूप षाड़त्व होता था। चार जातियां हमेशा सम्पूर्ण होती थीं और शेष 14 जातियों के 47 षाड़व प्रकार सम्भव थे तथा 30 औड़व प्रकार सम्भव थे।

मन्द्र और तार :– प्रत्येक जाति की एक निश्चित सीमा होती थी जिसके अन्दर गायक या वादक को रहना पड़ता था। मन्द्र स्थान में अंश, न्यास तथा अपन्यास तक जा सकते थे। इसी प्रकार तार स्थान में अंश स्वर से चौथे, पाँचवें या सातवें स्वर तक जा सकते थे। भरत ने अति तार स्थान का प्रयोग नही किया है।

प्र0.5 शारंगदेव के जाति लक्षणों का वर्णन कीजिए।

उ0. **शारंगदेव के जाति लक्षण :–**

शारंगदेव ने दस लक्षणों के अतिरिक्त तीन लक्षण और माने हैं :–

सन्यास :– जिस स्वर पर गीत का प्रथम भाग समाप्त होता था उसका वादी या अनुवादी स्वर सन्यास कहलाता था।

विन्यास :– गीत का अन्तिम स्वर विन्यास स्वर कहलाता था।

अन्तरमार्ग :– जाति के दस लक्षणों का पालन करते हुए तिरोभाव–अविर्भाव दिखाना अन्तरमार्ग कहलाता था।

प्र0.6 षाड़जी और आर्षभी जाति का वर्णन कीजिए।

उ0. **षाड़जी :–** यह सात शुद्ध जातियों में से एक है। इसमें रिषभ और निषाद के अतिरिक्त पांचों स्वर अंश स्वर तथा गान्धार और पंचम अपन्यास स्वर माने जाते हैं। इसमें पंचपाणी ताल प्रयोग किया जाता है। सा–ग और सा–ध की संगति इस जाति में दिखाई जाती है।

आर्षभी :– यह षड़ज ग्राम से उत्पन्न मानी गई शुद्ध जाति है। इसमें रिषभ, धैवत तथा निषाद अंश और अपन्यास दोनों हैं। रिषभ न्यास स्वर भी है, पंचम अल्प है। इसमें चच्चत्पुट ताल प्रयोग किया जाता है। इसमें ग–नि की संगति दिखाई जाती है।

प्र0.7 षड़जोदीच्यवती और गान्धारोदीच्यवती के विषय में बताइए।

उ0. **षड़जोदीच्यवती :–** यह षड़ज ग्राम की विकृत जाति है। इसमें सा–म–ध और नि अंश और ग्रह स्वर हैं। न्यास स्वर मध्यम है। सा–ध अपन्यास स्वर हैं।

गान्धारोदीच्यवती :– यह मध्यम ग्राम की विकृत जाति है। इसमें सा–म स्वर अंश होते हैं।

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. निबन्ध संगीत, डा0 लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. संगीत सारंग, डा0 विजय प्रवीण, 2014, मॉडर्न पब्लिशर, रेलवे रोड, जालन्धर।
3. संगीत विशारद, बसंत, संपादक–लक्ष्मीनारायण गर्ग, प्रकाशक–संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद।

13.11 महत्वपूर्ण प्रश्न :–

प्र0.1 जाति क्या है ? अलग–अलग विद्वानों की जाति परिभाषाओं से समझाइए।

प्र0.2 जाति के दस लक्षणों का वर्णन कीजिए।

संक्षिप्त वस्तु–निष्ठ प्रश्न–उत्तर

प्र01 संगीत विद्वानों ने श्रुति की संख्या कितनी मानी है ?

उ0. 22

प्र0.2 जाति के कुल कितने लक्षण हैं ?

उ0. 10

प्र0.3 भरत ने नाट्य शास्त्र में कितने रसों का वर्णन किया है ?

उ0. 8

प्र0.4 संगीत में मुख्यतः कितने रस प्रयोग होते हैं ?

उ0. 4

प्र0.5 व्यंकटमखी ने कुल कितने मेल बताए हैं ?

उ0. 72

प्र0.6 मध्यम ग्राम किस स्वर से प्रारम्भ होता है ?

उ0. मध्यम स्वर से।

प्र0.7 रसों की संख्या मुख्य रूप से कुल कितनी मानी जाती हैं ?

उ0. 9

प्र0.8 जाति की संख्या कितनी मानी गई है ?

उ0. 18

प्र0.9 संगीत में रम्या किसका नाम है ?

उ0. श्रुति का।

प्र0.10 एक ग्राम में कुल कितनी मूर्च्छना मानी गई हैं ?

उ0. सात

प्र0.11 जैन काल में संगीत का प्रचार किनके उपदेशों पर आधारित था ?

उ0. भगवान महावीर।

प्र0.12 भातखण्डे ने कुल कितने थाट बताए हैं ?

उ0. दस थाट।

प्र0.13 भारतीय संगीत में कुल मिलाकर कितने स्वरों का प्रयोग होता हैं ?

उ0. 12 स्वर।

प्र0.14 शारंगदेव ने जाति के कितने लक्षण माने हैं ?

उ0. 13 लक्षण।

प्र0.15 जब हम पशु , पक्षी, मनुष्य अथवा वाद्य की ध्वनि अथवा नाद को बिना देखे पहचान जाते हैं तब उसे क्या कहते हैं ?

उ0. नाद का गुण या जाति।

प्र0.16 मतंग ने किस ग्रन्थ की रचना की है ?

उ0. बृहद्देशी।

प्र0.17 नाद के कितने भेद हैं ?

उ0. दो भेद।

प्र0.18 संगीत रत्नाकर का रचनाकाल क्या है ?

उ0. 13वीं शताब्दी।

प्र0.19 भरत ने कुल कितने स्वर माने हैं ?

उ0. नौ स्वर।

प्र0.20 जाति या राग में स्वरों के अल्प प्रयोग को क्या कहा जाता है ?

उ0. अल्पत्व।

ASSIGNMENT

प्र0.1 भरत और मतंग के समय के संगीत का वर्णन कीजिए।

प्र0.2 रस को परिभाषित कीजिए तथा भरत के रस सिद्धांत पर प्रकाश डालिए।

प्र0.3 रामायण काल तथा महाभारत काल के संगीत का वर्णन कीजिए।

प्र0.4 मूर्च्छना पद्धति तथा मेल पद्धति का वर्णन कीजिए।

प्र0.5 श्रुति और स्वर के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालिए।

प्र0.6 नाद किसे कहते हैं ? उसके भेद व प्रकारों का वर्णन कीजिए।

प्र0.7 बौद्ध काल व गुप्तकाल के संगीत का वर्णन कीजिए।

प्र0.8 जाति और उसके दस लक्षणों का वर्णन कीजिए।

प्र0.9 ग्राम क्या है ? भरत द्वारा वीणा पर षड़ज और मध्यम ग्राम की स्थापना का वर्णन कीजिए।

प्र0.10 भरत और शारंगदेव के श्रुति स्वर सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।